Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

आध्यात्मिक पक्ष

प्रस्तावना

अध्यात्म से गांधीजी का अभिप्राय

सियारामशरणजी के काव्य में अभिव्यक्त
अध्यात्म का स्वरूप

उपसंहार ।

<u>प्रस्तावना</u> :

प्रत्येक कवि अपनी युगीन विचारधाराओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित होता है। कविता उसके विशिष्ट मानवीय व्यापारों से ही निष्पन्न होती है। उसमें अपने युग की छवि प्रतिबिंबित रहती है। सियारामशरणजी की काव्य साधना भी अपने युग से विशेष रूप से प्रभावित रही है। उनकी कृतियों में जहाँ युगीन/परिस्थितियों का यथार्थ अंकन हुआ है, वहाँ युग को प्रभावित करनेवाली गांधी-विचारधारा का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

वस्तुत: गांधी-विचारधारा अत्यंत ही गौरवपूर्ण है। इस मंगलकारिणी विचारधारा का प्रभाव किसी एक कवि विशेष पर ही नहीं पड़ा, बल्कि समस्त युग पर पड़ा है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "गांधीदर्शन हमारा "युग दर्शन" है और इसके सर्वतोव्यापी प्रभाव से आधुनिक कवि अछूते नहीं रह सके हैं।"[१] .... अनेक में गांधीवाद का प्रचारघोष भी

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ. नगेन्द्र - पृ. ३९

आवश्यकता से अधिक मिलता है, परंतु हिन्दी में मूलत: दो लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने गांधीदर्शन को गंभीरतापूर्वक ग्रहण किया है, जैनेन्द्र और सियारामशरण गुप्त। इनमें से जैनेन्द्रजी की स्वीकृति एकांत बौध्दिक है। उनकी आत्मा गांधीदर्शन के समसात्त्विकप्रभाव को ग्रहण नहीं कर सकी है। .....किंतु सियारामशरणजी के ह्रदय और बुध्दि दोनों का गांधीदर्शन के साथ पूर्ण सामंजस्य है, वह उनकी आत्मा में रम गया है।"[1] सियारामशरणजी के अतिरिक्त दिनकर, सोहनलाल व्दिवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, पंत, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, सुधीन्द्र ने भी गांधीदर्शन की अभिव्यक्ति की है। किंतु "गांधी विचारधारा का जितना प्रभाव सियारामशरणजी की लेखनी पर पड़ा है, उनके व्यक्तित्व पर उससे किसी भी रूप में कम नहीं है।"[2] डॉ. नगेन्द्र ने इस संबंध में लिखा है "हिन्दी में गांधीजी के तत्त्व चिंतन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति केवल एक ही कवि में मिलती है और वास्तव में वही एक ऐसा कवि है, जो अपनी सात्त्विक साधना के बल पर उसे अपनी चेतना का अंग बना सका है। ये कवि हैं सियारामशरणजी गुप्त। उनके काव्य का आज हिन्दी में पृथक् स्थान है। भारतीय चिंतनधारा की एक विशेष महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के वे अकेले कवि हैं।"[3]

सियारामशरणजी की कविताओं में गांधीदर्शन की समन्वय भावना सत्य और अहिंसा, करूणा, वेदना-निग्रह, असहिष्णुता, स्वाभिमान आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं। गांधीवाद के प्रमुख सिध्दांत सत्य-अहिंसा है, जिनकी व्यापक अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में दृष्टिगत होती है। अब हम सियारामशरणजी की कविताओं में अभिव्यक्त गांधीजी के आध्यात्मिक पक्ष का अनुशीलन करेंगे।

<u>अध्यात्म से गांधीजी का अभिप्राय :</u>

अध्यात्म का सामान्य अर्थ है आत्मा-परमात्मा संबंधी विचार या तत्त्व चिंतन। इस संदर्भ में गांधीजी ने सत्य, अहिंसा तथा आत्मशुध्दि

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डॉ. नगेन्द्र - पृ. ५१-५२
२. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॉ. ललित शुक्ल - पृ. ३५५
३. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डॉ. नगेन्द्र - पृ. ३९

पर ही विशेष विचार व्यक्त किये हैं। सत्य विचार के अंतर्गत उन्होंने ईश्वर के स्वरूप एवं आत्मा परमात्मा के संबंध में भी अपने विचार प्रकट किये हैं।

मनुष्य के जीवन का एकमात्र उद्देश्य है सत्य का साक्षात्कार करना। गांधीजी सत्य को ही ईश्वर मानते हैं। उनका ईश्वर शाश्वत है, सनातन है अर्थात् सत्य ही मनुष्य की मंजिल है, गंतव्य है, साध्य है। इसी साध्य की प्राप्ति के लिये मनुष्य भटकता है। ईश्वर का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। और "व्यापक सत्यनारायण के दर्शन के लिये जीवमात्र के प्रति आत्मवत् प्रेम परम आवश्यक है। अत: आत्मवत् प्रेम करने की इच्छा करनेवाला मनुष्य जीवन के किसी भी क्षेत्र से अछूता नहीं रह सकता।"[१] वे मानव सेवा व्दारा ईश्वर की अनुभूति का प्रयत्न करते दृष्टिगत होते हैं। उनकी दृष्टि में समस्त चेतन मात्र तत्वत: ईश्वर का ही प्रतिरूप है अत: वे तत्वत: एक हैं। इस तात्त्विक एकता के कारण ही वे केवल मनुष्य के साथ ही नहीं, बल्कि जीवमात्र के साथ भी अभेद का भाव अनुभव करना चाहते हैं।

ईश्वर अदृश्य है, अत: हम उसे देख नहीं सकते, केवल उसकी सत्ता का अनुभव कर सकते हैं। "यह सृष्टि परिवर्तनशील है। सृष्टि का नाश होता है, फिर भी उस सृष्टि के मूल में एक अविकारी, स्थिर, सबको धारण करनेवाली और फिर से सबका सर्जन करनेवाली एक चेतन सत्ता व्याप्त है। सर्व में व्याप्त वह सत्ता या आत्मा ही ईश्वर है। इन्द्रियों व्दारा जिनकी अनुभूति होती है वह नश्वर है। मात्र ईश्वर ही एक है और एकमात्र वही अनश्वर है।"[२]

इस प्रकार गांधीजी का ईश्वर के अस्तित्व में पूर्ण विश्वास है। गांधीजी सत्य की प्राप्ति का साधन अहिंसा को ही मानते हैं। किंतु अहिंसा का पालन तभी संभव है, जब कि मनुष्य हिंसा, व्देष, ईर्ष्या, लोभ,

---

१. सत्य अेज ईश्वर छे : सं. आर. के प्रभु : ले. गांधीजी : पृ. ५
२. वही : -"- -"- -"- : पृ. ७

क्रोध आदि दुर्भावनाओं से मुक्त हो जाय । इसके लिये आत्मशुध्दि की परम आवश्यकता है। आत्मशुध्दि के लिये नैतिक अनुशासन आवश्यक है। अत: गांधीजी ने नैतिकता के कानून की व्यवस्था करते हुए पाँच प्रतिज्ञाओं का उल्लेख किया है, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रहमचर्य। सत्य साक्षात्कार के लिये मनुष्य को इन व्रतों का मनसा, वाचा, कर्मणा पालन करना चाहिए।

सियारामशरणजी के काव्य में अभिव्यक्त अध्यात्म का स्वरूप :

सियारामशरणजी के काव्य पर गांधीजी के दर्शन का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होंने न केवल गांधीदर्शन के प्रमुख सिध्दांतों को अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, वरन् उन्हें अपने जीवन में भी पूर्णतया ग्रहण किया है।

गांधीदर्शन के प्रभाव का प्रमुख कारण कवि के वैष्णव संस्कार हैं। आस्तिक संस्कारों के कारण ही उनमें ईश्वर के प्रति अटूट आस्था पैदा हो गई। इसीसे वे गांधीदर्शन के अत्यधिक निकट आ सके। उन्होंने गांधीजी के विचारों को पूर्णतया आत्मसात कर लिया और उनकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति अपने काव्य के माध्यम से की। गांधीजी के आध्यात्मिक विचारों का भी उन पर गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। वे उनके विचारों से पूर्णतया सहमत हैं। उन्होंने भी गांधीजी के समान ईश्वर की अदृश्य सत्ता की ओर संकेत कर ईश्वर के अस्तित्त्व के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। उनकी कविताओं में सर्वत्र सत्य की पकड़ का आग्रह प्रकट हुआ है। सत्य की साधना कठिन है, इसके लिये साहस एवं दृढ़ मनोबल चाहिए। साहस एवं दृढ़ता से ही प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल बन जाती हैं। सियाराम-शरणजी ने भी साहस एवं दृढ़ता के महत्त्व को प्रतिष्ठित किया है और निर्भय होकर सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ते रहने के लिये प्रेरित किया है। सत्य की साधना के लिये अहिंसा अनिवार्य तत्त्व है जिसकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई है। सियारामशरणजी मानवतावादी कवि हैं। सत्य एवं

अहिंसा के निर्बाध पालन के लिये वे आत्म परिष्कार को आवश्यक मानते हैं। इसीलिये क्षमा, करुणा, दया, त्याग, उत्सर्ग, अहिंसा, प्रेम आदि सात्त्विक भावनाओं से उनका समूचा काव्य ओतप्रोत हैं। "उनके काव्य को पढ़कर मन आत्मद्रव से भीगकर एक स्निग्ध शांति का अनुभव करता है। इस काव्य में उत्तेजना का एकांत अभाव है। वह न भावों को उत्तेजित करता है और न विचारों को। भयंकर संघर्ष और उथल-पुथल के इस युग में जबकि सर्वत्र ही मूल्यों का कुहराम मचा हुआ है, उत्तेजना का यह शमन अद्भुत सफलता है।"[१] सियारामशरणजी बौध्दिक उत्तेजना से परिचित अवश्य है, तथा उनके खण्डकाव्य एवं स्फुट मुक्तकों में उन्होंने इसे प्रकट किया है, किंतु उन्होंने कहीं भी इसे स्वीकार नहीं किया। "युग के तूफान और आँधी के बीच उनका वह मंदिर-दीप जिसमें विश्वास अर्थात् सत्य की अग्नि-शिखा और स्नेह अर्थात् अहिंसा का घृत है, नीरव निष्कम्प जलता रहता है।"[२] तात्पर्य यह है कि "सियारामशरणजी की कविता बौध्दिक उत्तेजना से मुक्त आस्तिक विश्वास से प्रेरणा प्राप्त करती है और उनका यह विश्वास एकांत मानवीय मूल्यों पर, सत्य और अहिंसा पर आधृत होने के कारण शांत और नीरव है।"[३] शांति एवं अहिंसा के समर्थक होने के कारण उन्होंने युध्द को त्याज्य माना है और हिंसा को शांति का एक मात्र मार्ग अहिंसा को ही बतलाया है। अहिंसा पालन के लिये उन्होंने विनम्रता, आत्मपीड़ा एवं अभय के महत्त्व को भी स्वीकार किया है तथा कायरता की निंदा करते हुए आवश्यकता पड़ने पर कायरता की अपेक्षा वीरतापूर्वक मरने मारने के मार्ग को ही श्रेयस्कर माना है। इस प्रकार गुप्तजी की कविताओं में गांधीजी के विचारोंका सफल अंकन हुआ है और उन्हें "कवि रूप में गांधीवाद का आख्याता भी कहा जाता है।"[४]

----

१. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र : कवि सियारामशरण गुप्त लेख से. ले. डॉ. नगेन्द्र - पृ. ९८

२. वही : पृ. ९९

३. वही : पृ. ९९

४. सियारामशरण गुप्त :- व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र पृ. २००

<u>सत्य</u> :

सत्य गांधी विचारधारा का आधार स्तंभ है। सत्य की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। अहिंसा सत्य प्राप्ति का साधन है। अहिंसा पालन के लिये आत्मशुध्दि अनिवार्य तत्व है। गांधीजी ने सत्य साक्षात्कार के निमित्त एकादश व्रत के पालन पर जोर दिया है। सियारामशरणजी व्दारा अनूदित कृति 'हमारी प्रार्थना' में इन्हीं एकादश व्रतों की ओर संकेत है :

"अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रहमचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ।।
सर्वधर्म-समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना।
विनम्र व्रत निष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं।।"[1]

गांधीजी के अपने शब्दों में "सत्य शब्द का मूल 'सत्' है। 'सत्' के माने है 'होना,' सत्य अर्थात् होने का भाव। सत्य के सिवा और किसी चीज की हस्ती नहीं है। यह सत्य अखण्ड और एकरस है। संपूर्ण चर अचर में इसीकी सत्ता व्याप्त है। सत्य का दूसरा नाम परमेश्वर है।.... इसलिये परमेश्वर का सच्चा नाम सत् अर्थात् सत्य है।"[2] एक ही परम सत्य से अनुप्राणित होने के कारण प्राणिमात्र का समान अस्तित्व है। जब विश्वमें केवल एक ही तत्व का अस्तित्व है तो तात्त्विक दृष्टि से ईश्वर और मानव में तथा मानव और अन्य जीवों में कोई मौलिक भेद नहीं। इस संपूर्ण सृष्टि में आत्मा ही परम तत्व है। गांधीजी ईश्वरैक्य एवं ईश्वर में संपूर्ण जीवों के ऐक्य को मानते हैं। आत्मा की इस चरम एकता से उन्हें दो तत्वों की प्राप्ति होती है – जीवमात्र के प्रति समभाव और एक मनुष्य के जीवन का दूसरे मनुष्य के जीवन पर अनिवार्य प्रभाव। जब सभी में एक ही आत्मा अनुस्यूत है तो संपूर्ण विश्व के समस्त मनुष्य ही नहीं, समस्त जीवधारी भी मूलत: हमसे अभिन्न हैं। अतएव मानव मानव के भेद वर्ण, जाति, संप्रदाय,

---

१. हमारी प्रार्थना : अनुवादक : सियारामशरण गुप्त – पृ. ८
२. आत्मशुध्दि : गांधीजी – पृ. १

राष्ट्र, रंग आदि के सभी भेद मिथ्या है। मनुष्य से आगे संपूर्ण प्राणिजगत् के साथ भी हमारा अभेद है। यही समबुध्दि का परम सिध्दांत है।

गांधीवाद से प्रभावित आस्तिक कवि होने के कारण सियारामशरणजी का भी परब्रहम अखिलेश्वर में अदम्य विश्वास है। यहीं विश्वास उनके जीवन को गति प्रदान करता है। इसलिये कवि ईश्वर से यही विश्वास बनाये रखने की प्रार्थना करता है। कवि विषयवासना से युक्त भौतिक संसार को पार करने के लिये ईश्वर की भक्तिभावना का होना अनिवार्य मानता है। उसका यही विचार निम्न पंक्तियों में प्रकट हुआ है :

"पाकर उसकी, हो सहायता
सत्वर विना प्रयास,
विपद-सिंधु हम तर जावेंगे
है हमको विश्वास।"[१]

इस कविता में गांधीजी के समान कवि ने भी आंतरिक शुध्दि एवं पवित्रता के प्रति आग्रह प्रकट किया है।

'गूढ़ाशय' में भी प्रकृति के विस्तृत व्यापार में ईश्वर की अनुभूति कवि ने की है। प्रारंभ में स्वर्णसुमन प्राप्त न होने पर कवि का मन क्षुब्ध हो जाता है। वे उपवन में जाकर सुमन तोड़ने का निश्चय करते हैं। तभी सहसा उन्हें ईश्वर का गूढ़ाशय समझमें आ जाता है, जिससे उनका हृदय विशेष रूप से कृतज्ञ हो उठता है। 'माली के प्रति' कविता में परमपिता परमेश्वर को माली और मनुष्य को वृक्ष के रूप में अंकित कर कविने कबीर के समान रहस्य भावना का परिचय दिया है। इसमें ईश्वर की सर्जनकारी वृत्ति की ओर भी संकेत मिलता है। कवि का विचार है कि जब जीवन

---

१. दूर्वा-दल : 'विश्वास' कविता : पृ. १६

निरर्थक हो जाय तब उसकी काट छाँट जरूरी होती है। जीवन की निस्सारता की ओर संकेत करते हुए वे लिखते है :

"साथ छोड़ती जाती हैं सब -
शाखा आदि रुखाई से।
शुष्क हुए पत्तों को इसने
इधर उधर छितराया है।"[१]

'घट' कविता में रूपक योजना व्दारा कवि ने यह स्पष्ट किया है कि जीवन घट के समान है। जो जीवन में जितनी गहराई से पैठकर ज्ञान के मोती ढुंढता है, उसे उतनी ही प्राप्ति होती है। यह शरीर छल कपट रूपी कठोर कंकडों की रज से लिप्त हो भवभव के बंधनों में बंधा है। इन सांसारिक बंधनों में बंधकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे गले में फांसी का फंदा पड़ा हो, ज्यों ज्यों इस बंधन से मुक्ति का प्रयास किया जाता है बंधन निरंतर बढ़ता जाता है। वह घट की भाँति उत्तरोत्तर पतित हो संसार रूपी महाकूप में भ्रमित हो इधर उधर भटकता रहता है। सर्वत्र अज्ञान का अंधकार व्याप्त है। विवेक शक्ति नष्ट हो गई है। इस स्थिति में बंधन ही एकमात्र आश्रय है। मुक्ति का कोई उपाय नहीं सूझ रहा। ज्यों ज्यों वह सागर से उबरने का प्रयत्न करता है, त्यों त्यों वह घट की भाँति डूबता जाता है। जब तक वह सहायता के लिये ईश्वर को पुकारे, तब तक वह नीर में पूर्णतया डूब जाता है। किंतु ज्ञान को प्राप्त कर उसका गौरव परिपूर्णता को प्राप्त होता है। उसके जीवन का उन्नयन हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत कविता में जीवन के पतन एवं उन्नयन का चित्रण हुआ है। सुधारावादी नैतिक दृष्टि के कारण ही सियारामशरणजी सर्वत्र आत्मपरिष्कार पर जोर देते हैं। 'कब' शीर्षक कविता में प्रियतम के रूप में परब्रहम परमात्मा की ओर ही संकेत किया गया है। प्रियतमा अपने प्रियतम के स्वागत के लिये सुमनों को एकत्रित किये उसकी बाट जोह रही है। प्रियतम के आने में विलंब होने से वह चिंतित

---

१. दूर्वा-दल : 'माली के प्रति' कविता : पृ. २९

है, क्योंकि ये पुष्प क्षणभंगुर है :

"प्रियतम कब आवेंगे, – कब ?
कुछ भी देर हुई तो मेरे
सुमन सूख जावेंगे सब।"[१]

'पथ' शीर्षक कविता में कवि ने परब्रह्म के विराट् स्वरूप को अगम अथाह पथ के प्रतीक के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि ईश्वर के प्रति जिज्ञासा भाव व्यक्त करता हुआ कहता है :

"हे अलक्ष्य-गामी पथ!
आये हो कहाँ से तुम ?
करके मनोरथ
यहाँ से तुम
यात्री हुए कौन दूर देश के।"[२]

कवि ने ईश्वर को अनंत महासागर के रूप में चित्रित किया है। यह ऐसा महासागर है जिसका कोई पारावार नहीं। ईश्वर अगम अर्थात् इन्द्रियों से परे है। जीवात्मा ईश्वर रूपी महासागर की लहर है। जिस तरह लहरें तट पर आकर फिर उसी सागर में विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार यह आत्मा भी अंतत: परमात्मा में विलीन हो जाती है।

कवि अज्ञेय सत्ता के गूढ़ रहस्यों से परिचित होना चाहता है अत: वह उस अलक्ष्यगामी ईश्वर से अनुरोध करता है :

"पूरी दिन-चर्य्या जहाँ लिखित तुम्हारी हो,
अश्रुत युगों की गूढ़ गाथा छिपी सारी हो,
उस तहखाने तक तुम पहुँचाओ हमें,
अपना रहस्य सब खोलके दिखाओ हमें।"[३]

---

१. दूर्वा-दल : 'कब' शीर्षक कविता : पृ. ७८
२. दूर्वा-दल : 'पथ' कविता : पृ. ८०
३. वही : –"– : पृ. ८६

ईश्वर को अदृश्य विराट् सत्ता के रूप में चित्रित कर कविने गांधीवादी विचारधारा की ही पुष्टि की है।

'विषाद' की कुछ कविताओं में कवि ने जीवन को नश्वरता और संसार के शाश्वत गति प्रवाह के संबंध में विचार प्रकट किये हैं, निम्न पंक्तियों में नश्वरता के प्रति क्षोभ दृष्टव्य है :

"ज्योति वह कहाँ गई हा हन्त!
हुआ क्यों उसका ऐसा अंत ?
विधे! यह कैसा नया विधान,
आदि के साथ साथ अवसान!"[१]

'पाथेय' में कवि को दार्शनीकरण की प्रवृत्ति ही परिलक्षित होती है। इसमें ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना सर्वत्र पाई जाती है। कवि जीवन एवं जगत् के व्यापारों का विचार करते हुए उसके मूलाधार ईश्वर पर भी दृष्टि डालता है।

कवि का जीवन घर में पड़े पड़े निरर्थक होता जा रहा है। वह अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिये निर्भय होकर बाहय संसार में विचरण करना चाहता है। इसी उद्देश्य से वह माँ की आज्ञा लेकर भ्रमण के लिये निकल पड़ता है। माता से विदा लेने के पश्चात् कवि उन्मुक्त दिखाई पड़ता है। उस श्रेष्ठ आलोक ज्योति को प्राप्त कर वह अपनेको धन्य समझता है। यह अपूर्व आलोक हृदय कमल को विकसित कर स्वच्छंद विहार कर रहा है। अंतिम पंक्तियों में कवि ने ईश्वर की अदृश्य सत्ता की ओर संकेत कर जिज्ञासा भाव ही व्यक्त किया है :

"जीवन-मंत्र फूँक यह किसने
किया सफल श्रम का परिहार।
आहा यह समीर-संचार।"[२]

---

१. विषाद : पृ. १९
२. पाथेय : 'उन्मुक्त' कविता : पृ. १९

यह यात्री प्रारंभ में घने दुर्गम विजन के भीतर पैर बढ़ाने से घबराता है। अंत में वह मार्ग की कठिनाइयों की परवाह न कर अपने पैरों से आगे बढ़कर नूतन मार्ग बनाने का निश्चय करता है :

"उत्तरीय का क्या, यह तनु भी
क्षतच्छिन्न हो जाने दूँ,
इन शत शत काँटों में बिंधकर
लक्ष-लाभ निज पाऊँ मैं।"[1]

सत्य का मार्ग अनेक कठिनाइयों से भरा है। अत: गांधीजीने सत्य साक्षात्कार के निमित्त कठिनाइयों से संघर्षरत होने का उपदेश दिया है। इस कविता में भी लक्ष्य प्राप्ति के लिये अदम्य साहस एवं दृढ़ मनोबल की महत्ता को ही प्रकट किया गया है।

कवि की आत्मा परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये विव्हल है। वह पूज्यभाव से इस अज्ञात सत्ता को अपनी श्रध्दा के सुमन अर्पित करना चाहता है, किंतु अपनी लघुता को देख उसे क्षोभ होता है :

"तू अमल-धवल है, मैं श्यामल,
ऊँचे पर हैं तेरे पद-तल,
यह हूँ मैं नीचे का तृण-दल
पहुँचूँ उन तक किस भाँति हाय!"[2]

यहाँ ईश्वर की अविचल-अमल सत्ता का ही निरूपण है। ईश्वर की करूणा से ही प्राणियों में जीवन शक्ति का संचार होता है - इसी गांधीवादी मत की पुष्टि 'पूजन' कविता में हुई है। कवि ईश्वर को उसी उच्च स्तर पर प्राप्त करना चाहता है अत: वह गौरव गिरि से 'पूजन की नियमावली की माँग करता हुआ 'अविराम' चलता रहता है। यद्यपि प्रतिकूल परिस्थितियाँ

----

१. पाथेय : 'यात्री' कविता - पृ. २३
२. पाथेय : 'पूजन' कविता - पृ. २४

उसे पलायन के लिये उकसाती हैं, किंतु प्रतिकूल प्रकृति, समय की प्रतिकूलता एवं प्रतिकूल ऋतु में भी वह पल भर नहीं ठहरता। उसकी दृढ़ता के कारण प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी उसके अनुकूल बन जाती हैं। इस कविता में कवि ने प्रकारांतर से यही प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि यदि सत्यशोधक मार्ग की कठिनाइयों से भयभीत एवं निराश न होकर निर्भयता पूर्वक आगे बढ़ता रहे तो दुर्गम मार्ग भी सुगम बन जाता है। इसी पथपर चलकर आह्लाद मिलता है। कवि ईश्वर की असीम सत्ता में अपनी सत्ता विलीन कर आनंद विभोर हो उठता है :

"मेरे प्राण,
जो कुछ है चारों ओर,
जिसका न ओर छोर -
हो गये उसीमें हैं विलीयमान।"[1]

वह यात्री प्रारंभ में अंधकार में घिर जाने पर असहाय एवं निराश हो जाता है। उसे अपना संपूर्ण प्रयत्न व्यर्थ होता प्रतीत होता है। किंतु शीघ्र ही ईश्वर की कृपा से वह जागृत हो जाता है, उसके भय का निवारण होता है और किसी अज्ञात शक्ति से परिचालित हो वह उस अंधकार में ही आगे बढ़ता जाता है :

ऐं यह क्या! - मैं खड़ा हो गया,
कहाँ गया वह भय मेरा।
ओ जागृत, वह स्वप्न मात्र था
पथ है खुला पड़ा तेरा!

यात्री इठलाता हुआ मार्ग पर चला जा रहा था कि वह रास्ता भटक गया। वह जैसे जैसे आगे बढ़ता जाता है, प्रतिकूल परिस्थिति के कारण पिछड़ जाता है। यह ऐसा स्थान है, जहाँ निरंतर हिंस्त्र पशुओं का भय रहता है, किंतु वह साहसपूर्वक आगे बढ़ता जाता है और अपने लक्ष्य तक

----

१. पाथेय : 'आल्हाद' कविता : पृ. ३२

पहुँचने में सफल हो जाता है। 'अनुकूल' में भी कवि ने प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल होता हुआ चित्रित कर ईश्वर की अदृश्य सत्ता की ओर ही संकेत किया है।

कवि का मन संकट, भय एवं भ्रांति के कारण अशांत है, फिर भी वह विचलित नहीं होता। उसका विश्वास है कि ईश्वर की असीम कृपा एवं हमारे सद्प्रयत्नों से हमें निश्चय ही शांति लक्ष्मी मिलेगी।

'समाधान' में भी कवि ने निर्भयता, दृढ़ता एवं शुध्द प्रयत्न करने पर जोर दिया है। निम्न पंक्तियों में प्रयत्न की शुध्दता के प्रति ही आग्रह प्रकट हुआ है :

"दूरकर चिन्ता का गुरु-भार,
इन्हें जब कर लेगा तू पार,
विजय का रक्त-तिलक निष्पाप
पदों पर आ लोटेगा आप।"[1]

'आकांक्षा' कविता में बालक के चरित्र के माध्यम से कवि ने शुध्द प्रयत्न के प्रति आग्रह प्रकट किया है। जिस प्रकार कोमल पैर वाला बालकअसमतल भूमि की परवाह न कर हर्षविभोर होकर आगे बढ़ता है उसी प्रकार मनुष्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये बाधा व्यवधान की चिंता न कर अपनी गति को विस्तृत करना चाहिए। यदि गंतव्य पथ की ओर अग्रसर होते हुए वह भ्रमित हो जाय, या नीचे गिर जाय तो उसे तत्क्षण सदाचरण व्दारा जीवन के उन्नयन का प्रयत्न करना चाहिए। 'तिमिरालोक' में भी कविने विपरीत परिस्थिति में धैर्य धारण करनेपर बल दिया है। धैर्य रखने पर किसी एक वस्तु के अभाव में हमें दूसरी वस्तु प्राप्त हो सकती है।

'असफल' कविता में कवि पराजय में ही विजय की सफलता देखता है। उसका विश्वास है कि भले ही शत्रु की विजय भेरी बज रही हो, किंतु

---

१. पाथेय : 'समाधान' कविता - पृ. ९०

अविजय के इस आवरण में उसीकी विजय होगी। जिस प्रकार अंधकारपूर्ण अमावस्या में ही दीपावली का आगमन होता है, गिरकर कीचयुक्त होनेपर भी बादल के जल की चाहना सबको रहती है उसी प्रकार एक न एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब उसे तिरस्कृत समझकर उपहास उड़ानेवाले लोग ही उसकी प्रशंसा करेंगे। यहाँ समय की गतिशीलता की ओर संकेत है। यह काल इतना असीम एवं विराट् है कि उसे केवल आज में ही आबध्द नहीं किया जा सकता। आज की दु:ख एवं निराशाजन्य परिस्थितियाँ कल सुख में भी परिवर्तित हो सकती है। अत: हमें प्रत्येक स्थिति में संतुष्ट रहकर उचित समय का इंतजार करना चाहिए।

'वीरवंदना' में कवि ने ईश्वर की असीम सत्ता तथा उसके तेजोमय स्वरूप की ओर संकेत किया है। ईश्वर संपूर्ण चराचर में व्याप्त है तथा उन्होंने अपने शक्तिबल से संपूर्ण सृष्टि को अपने वश में कर रखा है इसी गांधीवादी मत का समर्थन इसमें हुआ है।

'मृण्मयी' में संकलित 'रज-कण' कविता में कवि ने मनुष्य को आत्मा और ईश्वर को परमात्मा के रूप में चित्रित कर परमात्मा के प्रति अपना आत्मनिवेदन प्रकट किया है। वे इस निर्झर प्रकृति का नियामक ईश्वर को ही मानते हैं तथा प्रकृति के मौन क्रियाकलापों में ईश्वर का संकेत पाते है। ईश्वर के विराट् स्वरूप को देखकर उनकी बुध्दि चकित हो जाती है तथा उनकी वाणी शिथिल हो जाती है। वह मन भर कर ईश्वर की विराट् झाँकी के दर्शन करना चाहता है।

कवि ईश्वर को परब्रहम परमात्मा मानता है और स्वयं को रजकण के समान तुच्छ मानता है। उन्हें अपनी सुकृति के फल स्वरूप जो कुछ प्राप्त हुआ है, इससे वे कृतकृत्य हैं। उनके लिये परमात्मा का मौन ही अर्थपूर्ण एवं मनभावन हो उठता है :

"मेरे लिये मौन ही तेरा
अर्थ-भरित है मनभाया,
कोई सुकृति - पवन ही मुझको
इस ऊँचे तक है लाया।"[1]

कवि को बहते हुए निर्झर के स्त्रोत स्वर में ईश्वर के अंतस् का संवाद ही फूटता हुआ अनुभव होता है। ईश्वर का सान्निध्य पाकर/उसकी तुच्छता विलीन हो गई और जड़ता निखर गई। इस कविता में कवि ने यही कहना चाहा है कि हम सदाचार एवं सत्कृति द्वारा अपने जीवन का उन्नयन कर ईश्वर के उच्च पद्तल तक पहुँच सकते हैं।

'लाभालाभ' कविता में भी ईश्वर के अखण्ड शासन को ओर संकेत किया गया है। इस संसार में ईश्वर की मरजी ही सर्वोपरि है। उसकी शक्ति से ही संपूर्ण चराचर जगत् परिचालित होता है। अत: मनुष्य की भलाई इसीमें है कि वह ईश्वर को सर्वोपरि मानकर न्यायपूर्ण कार्य में संलग्न रहे तथा अपराध का दण्ड भुगतने को तैयार रहे :

"भाग्य अपना है अपने साथ,
प्रथम ही करते हम सुविचार
न सहना पड़ता तो यह दण्ड।
दण्ड सह लेना ही अब सार,
यहाँ न्यायी नृप-राज्य अखण्ड।"[2]

'मंजुघोष' में भी ईश्वर की अदृश्य सत्ता की ओर संकेत है। सुख-दु:ख, वृष्टि-अनावृष्टि ईश्वर की ही मरजी पर आधारित है। एक एक क्षण का योग निश्चित है। प्रत्येक वस्तु किसी मनुष्य को उसी मात्रा में उपलब्ध हो सकती है जिस मात्रा में विधि का विधान हो। अत: मनुष्य को भाग्यपर भरोसा रखना चाहिए और जो कुछ मिले उसी को ईश्वर की कृपा समझकर

---

१. मृण्मयी : 'रज-कण' कविता - पृ. ८
२. मृण्मयी : 'लाभालाभ' कविता - पृ. १८

ग्रहण करना चाहिए। निम्न पंक्तियों में ईश्वर की अदृश्य सत्ता की ओर ही संकेत है :

"गूढ़ उस एक ही पुरुष का
चक्र चलता है त्रिभुवन में।
अणु-परमाणु, कण कण में
मांगलिक उसका विधान परिव्याप्त है।"[1]

'नाम की प्यास' में सत्य की पकड़ के प्रति आग्रह प्रकट हुआ है। इसमें ढोंग या पाखण्ड वृत्ति पर प्रहार किया गया है। कवि की चिंतनधारा गांधीजी के दर्शन एवं व्यक्तित्व से प्रभावित है। "गांधीजी अपनी पूर्णता का ढोंग नहीं रचते थे। वे इस पृथ्वी पर पार्थिव थे और स्वर्ग में स्वर्गीय।"[2] इस कविता का मूल उद्देश्य यशलिप्सा से प्रेरित कार्य की निस्सारता प्रकट करना है। शुध्द लोकहित की दृष्टि से किया जानेवाला कार्य ही कवि की दृष्टिमें नीति संगत है। नाम की झूठी प्यास एवं यशलिप्सा पर प्रहार करते हुए कवि लिखता है :

"जाओ धनी,
जान लिया नाम की तुम्हें थी प्यास।
जिसके निमित्त था कठोर यास
नामकी तुम्हारे यह कृति तो तुम्हारी बनी।"[3]

सियारामशरणजी भी गांधीजी के समान सत्य साधना के लिये लक्ष्य एवं साधन की शुध्दि पर जोर देते हैं। साधन शुध्द एवं नीति युक्त न होने पर किसी भी शुभ कार्य में सफलता नहीं मिल सकती। धनी के मन में चूंकि नाम की प्यास थी अत: उसके प्रयास व्यर्थ साबित हुए।

----

१. मृण्मयी : 'मंजुघोष' कविता - पृ. ४३
२. गांधी और गांधीवाद : पट्टाभिसीतारम्मैया : भाग-२ - पृ. १२९
३. मृण्मयी : 'नाम की प्यास' - पृ. ६०

'छल' कविता में भी ईश्वर की अनंतता और विशालता की ओर संकेत किया है। ईश्वर अनंत सागर के समान है। मनुष्य उस सागर की एक ऊर्मि के समान तुच्छ या क्षुद्र है। मनुष्य के लिये यह यथेष्ट है कि वह इस श्रेष्ठ महासागर में थोड़ासा निमज्जन करके अपने तुच्छ घट को पुण्य से भर ले। सत्य रूपी सागर को थाह पानेवाले मनुष्य को ही ज्ञान का मोती प्राप्त होता है :

"थाह ले सकें जो, वही पावें रत्न"।"[१]

इस पंक्ति में सत्य की प्राप्ति का आग्रह ही प्रकट हुआ है। 'अमृत' कविता में भी कवि ने विष और अमृत का प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयोग कर यह दर्शाना चाहा है कि जीवन की गहराई में प्रवेश किये बिना सत्य की प्राप्ति असंभव है। जब तक सुरासुर गण समुद्र की ऊपरी सतह को ही टटोलते रहे, तब तक उन्हें अपनी इच्छित वस्तु नहीं मिल सकी, किंतु जब उन्होंने समुद्र के भीतर पैठकर उसका मंथन किया तभी उन्हें अमूल्य रत्नों के साथ अमृत भी प्राप्त हो सका।

वास्तव में जीवन की कठोर यथार्थता ही विष है तथा उसे सहन कर लेना ही अमृत प्राप्त करना है। मनुष्य को जीवन में आनेवाली कठिनाइयों से भयभीत न होकर उसका दृढ़तापूर्वक सामना करना चाहिए। अहिंसा दर्शन से प्रभावित होने के कारण गुप्तजी आत्मपीड़ा को जीवन का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। पीड़ा में आनंद की भावना का अनुभव कर लेना ही जीवन का समाधान प्राप्त करना है। 'अमृत' में कवि का उक्त जीवन दर्शन ही अभिव्यक्त हुआ है।

'बापू' में कवि ने ईश्वर के स्वरूप पर विचार करते हुए उसे रूपातीत बताया है। उनका मानना है कि ईश्वर स्वयं अपने रूप को किसी छोटे से पत्थर में प्रकाशित करता है। यद्यपि वह भक्त के समक्ष अप्रकट रहता है,

---

१. मृण्मयी : 'छल' कविता : पृ. ६९

किंतु जब संपूर्ण सृष्टि स्पंद बद्ध एवं चेतना शून्य हो अज्ञान के अंधकार में डूब जाती है, तभी ईश्वर संसार रूपी वृत्तिका में अपने गूढ़ रहस्य का अमित प्रकाश भरकर युग कक्ष मे अंधकार को दूर कर उसे प्रकाश से भर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर ज्ञान एवं प्रकाश रूप में अपने स्वरूप को प्रकट करता है। गांधीजी भी ईश्वर को ज्ञान रूप हो मानते थे। इस काव्य में कवि ने दार्शनिक तत्वों का भी वर्णन किया है :

"अंत! अरे कौन कहाँ कैसा अंत ?
श्री गणेश यह है नवीन के सृजन का,
आद्यक्षर नव्य भव्य जीवन का।"[1]

कविने आत्मा को परमात्मा का अंश बताकर यह स्पष्ट करना चाहा है कि आत्मा का विनाश हिंसा के उपद्रव से संभव नहीं। उस परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा अमर है। विनाश या क्षय केवल शरीर का हो होता है।

गुप्तजी गांधीजी के समान ईश्वर को शाश्वत एवं परिपूर्ण मानते हैं। वह गौरवशाली एवं महिमायुक्त ईश्वर भले ही अलक्षित रहे, किंतु वह चिरंतन मधुर ईश्वर अणु अणु में व्याप्त है। कवि का विश्वास है कि भले ही समय युग युग के डग भरते हुए कितना ही आगे निकल जाय, किंतु इस किशोर के कोमल पग सदैव अडिग रहेंगे:

"ग्राम-ग्राम में, घाट-बाट में, भीतर-बाहर,
सुलभ रहेगा बाल रूप वह सबको घर घर।"[2]

'उन्मुक्त' में गांधीवादी अद्वैतभावनाका समर्थन किया गया है। सभी प्राणियों में एक हो आत्मा अनुस्यूत है। इस तरह एक ही ब्रहम का अंश होने के कारण सभी मनुष्य एक समान हैं। जिस प्रकार इन्द्रधनुष में दिखाई देनेवाले विभिन्न रंग सफेद रंग से ही उत्पन्न होते हैं, उनमें मूलत: कोई भेद

---

१. बापू : पृ. ५९
२. नकुल : पृ. १७

नहीं है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने शरीर की भिन्न बनावट एवं रूप रंग के कारण भिन्न दिखाई देता है। किंतु सभी मनुष्य में स्थित आत्म तत्व एक समान ही है। 'उन्मुक्त' में कवि ने सभी जीवों की अभिन्नता को ही प्रकट किया है :

"नहीं कहीं कुछ भेद, एक ही इन्द्रधनुष में
भासित वे बहुवर्ण, वर्ण ये पुरुष-पुरुष में
बाहर के आभास, एकता ही अंतर्गत।"[१]

वह एकता सबमें अनुस्यूत है। वह अखण्ड सत्य की एकता है। इसी एक सत्य से अनुप्रेरित होने के कारण मानव स्वभावत: अकलुष है। सारा कलुष परिस्थितिजन्य आवरण मात्र है जिसके हटजाने से मनुष्य का शुध्द यह मानव फिर अपने मूल रूप में आ जाता है :

"वह सैनिक भी न था और कुछ, वह था मानव,
ऐसा मानव, लाभ उठा जिसकी शिशुता का
किसी इतर ने चढ़ा दिया था उस पशुता का
ऊपर का वह खोल। आत्मविस्मृति ने छाकर
उसका बोध विलोप कर दिया था, मैं उस पर
रोष करूँ या दया ?"[२]

अतएव पाप वास्तव में भ्रांति है। इसीलिये पापी क्रोध का पात्र न होकर दया का पात्र है। रोष करना तो स्वयं हिंसा है और हिंसा से हिंसा की शांति संभव नहीं। इसी एकात्मभाव के कारण गुणधर के मन में प्रतिपक्षी की घायल अवस्था को देखकर करुणा निष्पन्न होती है। 'गोपिका' में भी कवि ने ब्रह्म और जीव के अंश अंशी संबंध की ओर संकेत कर अव्दैत की स्थापना की है :

---

१. उन्मुक्त : 'सुश्रूषालय' शीर्षक कविता : पृ.७६-७७
२. वही : -"- -"- -"- : पृ. ८१

"दुर्जय चला जा रहा है रुक्मिणी के साथ राज पथ पर। और ये हैं निम्बा, ये स्वस्ति और इन्दुजीजी - एक साथ - एक रूप सबके वे श्री गोपाल।"[१] श्याम और श्यामा रंग, रस और रुचि के साथ इस तरह तद्नुरूप एवं एकाकार हो गये हैं कि उनको पृथक् पृथक् करना कठिन है :

"श्याम कौन, श्यामा कौन, हम भी न जान सकीं - एक रंग एक रुचि एकाकार।"[२]

ईश्वर गुणातीत है अर्थात प्रकृति के तीनों गुणों से अलिप्त या परे है। उसकी प्राप्ति बहुत ही कठिन है - इस मत का प्रतिपादन इन्दु के माध्यम से करवाकर कवि ने गांधीमत का ही समर्थन किया है। गांधीजी भी ईश्वर को अगोचर, गुणातीत मानते थे। इन्दु के इस कथन में ईश्वर के गुणातीत रूप का ही संकेत है :

"देखा न था यह रूप-पूरे गुणातीत तुम, पा सका है, छू सका है कौन तुम्हें।"[३] वह सत्य नहीं है जो अतीत में ही डूब जाय और वर्तमान तक न आ सके। सत्य तो देशकाल की सीमासे परे है। कृष्ण और गोपिका प्रत्येक नर एवं नारी के रूप में सदैव अवतरित होते रहते हैं। इस तरह वे कालातीत हैं।

इसमें संसार की क्षणभंगुरता पर भी विचार किया गया है। इन्दु यह सोचकर परेशान है कि श्याम जिस कमलिनी को चुनकर ले गये थे, वह अब तक सूख चुकी होगी। उसकी पंखुरियाँ चूर चूर होकर नष्ट हो गई होंगी। उसका वह रंगरूप नश्वर था। किंतु उसकी सौरभ कभी नष्ट नहीं हो सकती। वह मनमें बस सकती है। विनाश से ही नवसृजन होता है। एक कमलिनी सूखती है, तो दूसरी कमलिनी तुरंत जल में फूट पड़ती है। वे इसलिये सूखती हैं कि हम उसमें नवीन को, चिरंतन को बार बार खिला हुआ

---

१. गोपिका : पृ. २३०
२. गोपिका : पृ. २०-२१
३. गोपिका : पृ. ६३

देख सकें। यह तो जन्मजन्मांतर की साधना है। उस कमलिनी के सूखने में हम नूतन और पुरातन को एक साथ पा लेते हैं। सृष्टि का क्रम निरंतर चलता रहता है। अत: किसी वस्तु के नष्ट होने पर हमें दु:खी नहीं होना चाहिए।

'गीता' में भी ईश्वर के अस्तित्व की ओर संकेत है। ईश्वर ही संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण है। उससे ही यह संपूर्ण जगत् चेष्टा करता है। ईश्वर ही परब्रहम, परमधाम एवं परम पवित्र है, वही देवों के भी अधिदेव हैं, वह अजन्मा और सर्वव्यापी है। सभी प्राणिमात्र के हृदय में स्थित सबका आत्मा ईश्वर का ही अंश है। कोई भी ऐसा चर और अचर भूत नहीं है, जो ईश्वर से रहित हो। जिस तरह असत् का अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार सत्य का अभाव नहीं होता। यह जीवन नाशवान है, क्षणभंगुर है। इस संपूर्ण जगत् में एकमात्र ईश्वर ही अविनाशी या अनश्वर है :

"अविनाशी उसे जानो फैला है जिससे जगत्,
विनाश अविनाशी का भला हो सकता कहीं ?"[1]

उस अविनाशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है। "यह आत्मा परमात्मा का ही अंश है अत: इस आत्मा को नित्य स्वरूप, असीम और अक्षय कहा गया है। क्षयमात्र शरीर का होता है।"[2] यह आत्मा नि:संदेह सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहनेवाला सनातन है। वह मन के लिये अगम्य, अगोचर, तथा विकाररहित अर्थात् न बदलने वाला कहा जाता है।

यह संपूर्ण जगत् सूत्र में मणियों के समान ईश्वर में गूंथा हुआ है। जो पुरूष निष्काम भाव एवं पूर्ण श्रध्दा से माया को तजकर ईश्वर की शरण में जाते हैं, वे संसार सागर को तर जाते हैं। इस अहंता ममता और वासना रूप अतिदृढ़ मूलवाले संसार रूपी पीपल वृक्ष को दृढ़ वैराग्य रूप

---

१. 'गीता संवाद': दूसरा अध्याय १७ वाँ श्लोक : अनु. सियारामशरण गुप्त पृ. २९
२. 'गीता संवाद': दूसरा अध्याय १८ वाँ श्लोक : अनु. सियारामशरण गुप्त पृ. २९

शास्त्र व्दारा काटकर उस परमपद रूप परमेश्वर को खोजना चाहिए। इस तरह जो मनुष्य ईश्वर को सर्वोत्तम सत्ता के रूप में जान लेता है, फिर उसका मन एक क्षण भी भगवान के चिंतन का त्याग नहीं कर सकता, क्योंकि जिस वस्तुको मनुष्य उत्तम समझता है, उसीमें उसका प्रेम होता है और जिनमें प्रेम होता है, उसीका चिंतन होता है। अतएव सब का प्रमुख कर्तव्य है कि भगवान के परम गोपनीय प्रभाव को भलीभाँति हृदयंगम करके नाशवान क्षणभंगुर संसार की आसक्ति को सर्वथा त्याग करके एवं परमात्मा की शरण होकर भजन और सत्संग की चेष्टा करे।

'हमारी प्रार्थना' कविता में भी ईश्वर के अस्तित्व की ओर संकेत है :

"हरि: ॐ ईश का आवास यह सारा जगत्,
जीवन यहाँ जो कुछ उसीसे व्याप्त है।
अतएव करके त्याग उसके नाम से
तू भोग कर उसका, तुझे जो प्राप्त है।
धन की किसी के भी न रख तू वासना।"[१]

यह ईश्वर अदृश्य होकर भी प्रकृति की गोद में क्रीड़ारत है। परमात्मा दूर रहकर भी हमारे निरंतर समीप रहता है। मनुष्य के अंतर्बाह्य में परमात्मा का निवास है अत: सभी प्राणी समान है।

"जब जो निरंतर देखता है, भूत सब
आत्मस्थ ही हैं, और आत्मा दीखता
सम्पूर्ण भूतों में जिसे, तब वह पुरुष
ऊबा किसी के प्रति नहीं रहता कहीं।"[२]

इस प्रकार जिस मनुष्य के लिये सभी प्राणि आत्ममय हो गये हैं तथा जो निरंतर प्राणिमात्र में एकत्व भाव का अनुभव करता है तब उस दशा में वह मोह और शोक रहित हो जाता है।

---

१. 'हमारी प्रार्थना': अनुवादक सियारामशरण गुप्त : पृ. ९
२. 'हमारी प्रार्थना' : अनुवादक सियारामशरण गुप्त : पृ. ११

"सत्य का मुख उस पात्र से आवरित है जो स्वर्णमय है। माया के आवरण में छिपी इस ईश्वरीय सत्ता को हम अज्ञान के कारण ठीक तरह से पहचान नहीं पाते, अज्ञानता दूर हो जाने पर एवं माया का आवरण हट जाने पर परब्रहम से साक्षात्कार हो सकता है।"[1]

सत्य की प्राप्ति के निमित्त गांधीजी अहिंसा पालन और आत्मशुध्दि पर जोर देते थे। अब हम सियारामशरणजी के काव्य में अभिव्यक्त अहिंसा के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

अहिंसा :

अहिंसा का अर्थ दयामात्र नहीं है, अहिंसा प्रेम का समानार्थक है और प्रेम से उद्भूत सभी सद्गुण इसमें पाये जाते हैं। प्रेम के लिये सहिष्णुता अनिवार्य तत्व है। कष्ट सहिष्णुता में धैर्य और क्षमाभावना निहित रहती है। अत: प्रेम करनेवाले व्यक्ति को ईर्ष्या, द्वेष से रहित होना चाहिए, क्योंकि ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि तो प्रतिशोध की भावना को उत्पन्न करनेवाले मूल कारण हैं। अहिंसा और घृणा परस्पर विरोधी है। अहिंसा के लिये प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव होना जरूरी है।

गांधीजी की अहिंसा में सर्वोदय की विराट् भावना है। अत: मानव कल्याण के निमित्त वे अहिंसा और प्रेम जैसे पवित्र साधनों का ही आग्रह रखते हैं।

गांधीजी शांति स्थापना के लिये युध्द को त्याज्य मानते हैं। आत्मरक्षा के लिये किये जाने वाले युध्द का भी वे समर्थन नहीं करते। उनका यही कहना था कि "बचाव के लिये तलवार पकड़ने की बात की जाती है, पर आज तक मुझे दुनिया में एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला है जिसने बचाव से आगे बढ़कर प्रहार न किया हो।"[2] अहिंसा का मूल

---

१. 'हमारी प्रार्थना' : अनुवादक : सियारामशरण गुप्त : पृ. १४
२. सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र : पृ. १४६

आदर्श यह है कि हमें शत्रु से घृणा नहीं प्रेम करना चाहिए। उसकी उन्नति की कामना करनी चाहिए। स्वयं सहिष्णु बन करके अहिंसक व्रत धारण करके उसका हृदय परिवर्तन करना चाहिए। उसकी पशुता के भीतर छिपे हुए मानव रूप को उभारने का प्रयत्न करना चाहिए।

"मनुष्य चाहे कितना ही स्वार्थांध हो जाय और कितने ही घातक या कुटिल उपायों से काम लेने को तैयार क्यों न हो गया हो, फिर भी उसके अंतस्तल में, सत्य ही सर्वोपरि है यह प्रतीति और इसलिये उसके प्रति आदर और भय बना ही रहता है। मनुष्य मात्र के हृदय में स्थित सत्य विषयक यह गुप्त निश्चय, आदर और भय, यही सत्याग्रह-शास्त्र की बुनियाद है। इसी को मनुष्य के हृदय में रहनेवाली 'अंत:करण की आवाज' कह सकते हैं। स्वार्थ के वशीभूत मनुष्य अंत:करण की इस आवाज की ओर दुर्लक्ष्य करने अथवा उसे दबा देने का कुछ समय तक प्रयत्न करता है। पर उसका विरोधी अगर सच्चा सत्याग्रही हो तो अंत में वह आवाज उसे सुननी ही होगी।"[१] अपने न्याय का निश्चय हो जाना और उसके लिये पश्चाताप होना इसका श्रेष्ठ प्रतिकार है। इसीको हृदय परिवर्तन कहते हैं। "कठोरतम धातु भी पर्याप्त ताप से पिघल जाती है। इसी प्रकार कठोर से कठोर हृदय भी अहिंसाके पर्याप्त ताप के आगे द्रवित हो जाता है। और ताप उत्पन्न करने की अहिंसा की क्षमता की कोई सीमा नहीं है।"[२] किंतु गांधीजीकी करुणा कायरों की अहिंसा नहीं है उसमें तलवार का वार हँसते हुए झेलने की अपार शक्ति है।

गांधीजी के समान सियारामशरणजी भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा पालन करने का आग्रह करते हैं। वे किसी भी समस्या के समाधान के लिये हिंसा का प्रयोग अनुचित मानते हैं। 'मौर्य-विजय' में यद्यपि गांधीवाद की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं हुई है तथापि यह कृति गांधीजी के विचारों से सर्वथा मुक्त नहीं है। इसमें अतीत गौरव की पृष्ठभूमि में अभय एवं अहिंसा

---

१. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला : पृ. ५३
२. गांधी और गांधीवाद, मूल लेखक डा. बी. पट्टाभीसीतारमैय्या, हिन्दी रूपांतरकार : वेदराज वेदालंकार : पृ. ४७

सिध्दांत को अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्ति हुई है। गुप्तजी भी शरीर बल के स्थान पर आत्मिक बल को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसी आत्मिक शक्ति के कारण चंद्रगुप्त युनानियों के आक्रमण से अप्रभावित रहता है। इसी नैतिक शक्ति ने उसमें दृढ़ता एवं आत्मविश्वास को जगाया है। उसका विश्वास है कि भले ही शत्रु शक्तिशाली हो, किंतु आर्यों को आत्मिक शक्ति के सम्मुख वे टिक नहीं पावेंगे और धर्म के युध्द में विजय उसीकी होगी। यों तो गांधीजी अहिंसक नीति के ही समर्थक थे। किंतु वे कायरता के प्रबल विरोधी थे। उनकी अहिंसा में कायरता तथा भय को स्थान नहीं था। "गांधीजी गुलामी और कायरता की अपेक्षा हिंसा को अधिक श्रेयस्कर मानते हैं और लोगों को खतरों में कायरता और डर से भाग जाने की अपेक्षा बहादुरी से लड़ने और मरने मारने की सलाह देते हैं।"[1] कवि ने सेल्यूकस के माध्यम से कायरता के प्रति विरोध ही प्रकट किया है :

"बता रहे हैं भीरू तुम्हें ये शत्रु तुम्हारे,
क्योंकि युध्द से भाग रहे तुम भय के मारे ।
होकर कातर और भीत प्राणों के डर से,
पीछे हटते भला वीर भी कहीं समर से ?"[2]

कवि गांधीजी के समान ही शांति स्थापना का समर्थक है। महात्मा गांधी को युध्द से घृणा थी। वे समाज में हो रही हिंसा से क्षुब्ध थे। युध्द जन्य उत्पीड़न उनके लिये असहय था। उनका मानना था कि हिंसा से कोई लाभ नहीं होता, बल्कि हानि ही होती है। "युध्द जनता के लिये वरदान नहीं है। यदि यह मान भी लिया जाय कि युध्दों से किसी जनता को कुछ लाभ हुए हैं तो भी उनके साथ उन पर भारी बोझ भी पड़ा है। इसलिये अहिंसक प्रतिरोधी की नहीं, किंतु युध्दों की निंदा की जानी चाहिए।"[3]

----

१. सर्वोदय ÷ तत्त्व-दर्शन : गोपीनाथ धवन : पृ. १७०
२. मौर्य विजय : पृ. ४७
३. दि पावर ऑफ ननवायलेन्स का हिन्दी रूपांतर : ले. रिचर्ड बी. ग्रेग पृ. १३३

गांधीदर्शन से प्रभावित होने के कारण गुप्तजी का मन भी युध्द की विनाशलीला को देखकर क्षुब्ध हो उठता है। एथेना के माध्यम से उन्होंने युध्द की निंदा की है :

"क्या ऐसा भीषण काण्ड भी
हो सकता सत्कर्म है ?
इस घोर युध्द का रोकना
निश्चय मेरा धर्म है ?"[1]

एथेना अहिंसा एवं शांति की प्रबल आकांक्षी है। अत: वह पिता को समझाना अपना परम कर्तव्य समझती है, जिससे व्यर्थ में रक्तपात और विनाश न हो तथा देश की चिरशांति भंग न हो।

गांधीजी की अहिंसा में क्षमाभावना का विशेष महत्त्व है। इसमें शत्रु के प्रति घृणा के स्थान पर प्रेमपूर्ण व्यवहार द्वारा ह्रदय परिवर्तन करने का प्रयत्न किया जाता है। "मौर्य विजय" में गुप्तजीने हिंसात्मक प्रवृत्तियों से प्रेरित सेल्यूकस का ह्रदय परिवर्तन चंद्रगुप्त की क्षमाभावना द्वारा करवाकर गांधीदर्शन के ह्रदय परिवर्तन सिध्दांत का ही प्रतिपादन किया है।

चंद्रगुप्त की यह क्षमा कायरों की क्षमा नहीं है, बल्कि एक सच्चे वीर की क्षमा है। वह अपना अनिष्ट चाहनेवाले सेल्यूकस को भी यह कहकर बंधन मुक्त करना चाहता है :

"बंदी हैं सम्राट आप इस समय हमारे,
क्षमा किये पर दोष आपके हमने सारे।"[2]

सेल्यूकस भी वीर एवं साहसी है अत: वह किसी की दया या क्षमा पर जीवित नहीं रहना चाहता। वह क्रुध्द हो कहता है :

----

१. मौर्य विजय : पृ. ५७
२. वही : पृ. ६३

"क्षमा नहीं है इष्ट मुझे मरने के डरसे
करलो जो कुछ तुम कर सको,
दया चाहता मैं नहीं।"[1]

चंद्रगुप्त उसके व्दारा अपमानित होकर भी क्रुध्द नहीं होता। बल्कि वह उसकी वीरता का समर्थन कर सम्मान सहित उसे मुक्त कर देता है। उसके इस व्यवहार से सेल्यूकस का ह्रदय परिवर्तित होता है। वह अपनी गल्ती का अहसास कर ग्लानि का अनुभव करता है और चंद्रगुप्त से एथेना का विवाह करने का निर्णय लेता है :

"शत्रुता चंद्रगुप्त ने क्या दिखलाई ?
की है उस पर स्वयं हमीने प्रथम चढ़ाई।
है वह वीर-वरिष्ठ और गुणशाली अनुपम
तो फिर उससे क्या न सुता का ब्याह करें हम।"[2]

'अनाथ' भी स्पष्टतया गांधीवाद से प्रभावित है। इसमें तत्कालीन सामाजिक स्थिति की ओर संकेत करते हुए भी कवि का मूल लक्ष्य इस रचना को गांधीवादी रूप प्रदान करना ही रहा है।

अन्याय एवं अत्याचार की समाप्ति के लिये कवि ने मौन कष्ट सहन व्दारा अन्यायी के ह्रदय परिवर्तन के सिध्दांत को ही अपनाया है जो गांधीवादी जीवन दर्शन के सर्वथा अनुकूल है। गांधीजी की दृष्टि में "अन्यायी के प्रति हिंसा करना, उसके साथ अपनी आध्यात्मिक एकता को भूला देना है।"[3] 'अनाथ' का मुख्य नायक मोहन भी आत्मकष्ट सहन का मार्ग ही अपनाता है। वह अश्रु प्रवाह में ही अपने मन की पीड़ा एवं व्यथा को धुलाकर बहा देना चाहता है। प्रारंभ में चौकीदार के दुर्व्यवहार से मोहन के मन में हिंसात्मक प्रतिकार की भावना जागृत होती है। वह

---

१. मौर्य विजय : पृ. ६३
२. मौर्य विजय = पृ. ६७
३. सर्वोदय तत्व दर्शन : श्री. गोपीनाथ धवन : पृ. ६२

अन्याय का डटकर विरोध करना चाहता है किंतु उसे अपनी दुर्बलता का अहसास भी है, अत: वह सबकुछ चुपचाप सहन करके चौकीदार की बात मानने को तत्पर हो जाता है। वह अहिंसात्मक मार्ग से अन्याय का विरोध करता है तथा पददलित मानव समाज का प्रतिनिधि बनकर साहूकार एवं शोषक वर्ग को सचेत भी करता है :

"हे देशवालों, तुम सतालो और जितना हो सके,
हम दीन हैं, तुम बल जतालो और जितना हो सके,
यह याद रखना, किंतु तुम भी बच नहीं सकते कभी
बस एक घर की आग से है गाँव जल जाता सभी।"[1]

इस तरह मोहन का आचरण आरंभ से लेकर अंत तक अहिंसा भावना से ही प्रेरित है।

मुरली के चरित्र में कवि ने 'पराईपीर' की भावना को प्रकट किया है। वह स्वयं असाध्य रोग से पीड़ित है। उदर की क्षुधा उसे व्यथित किये हुए है। किंतु उसे अपनी परवाह नहीं। छोटे भाई की क्षुधा और माँ की विवशता को देख उसका मन विचलित हो जाता है। वह माँ से अनुरोध करता है :

"भैया को तो खिला अरी माँ, चाहे जैसे,
सह सकते हैं भूख फूल - से बच्चे ऐसे ?
मुझे मिलेगी परम शांति, चिंता तज मेरी,
दे खाने को इसे, न कर अब कुछ भी देरी।"[2]

इन पंक्तियों में गांधीजी की परदु:ख कातरता का भाव ही प्रकट हुआ है। 'आर्द्रा' की कविताओं में भी गांधीवाद के प्रमुख सिध्दांत ह्दय परिवर्तन का ही प्रतिपादन किया गया है। 'डाकू' कविता में

----

१. अनाथ : पृ. ३०
२. वही : पृ. ६

गांधीजी के हृदय परिवर्तन सिध्दांत की प्रत्यक्ष झाँकी दिखाई देती है। एक डाकू डाका डालने जाता है, पर सामने एक बालिका को देखकर उसे अपनी बेटी का स्मरण हो आता है और वह अपना कुकृत्य छोड़ देता है। यह एक प्रकार का हृदय परिवर्तन ही है। डाकू के हृदय का पश्चाताप अत्यंत मार्मिक शब्दों में प्रकट हुआ है :

"छीन कर उन लोगों से गोद
लिया लड़की को। इतना मोद
अभी तक है उस उर में अहा!
कठिनता से ही अश्रु प्रवाह
रूक सका।"[१]

अंत में अहिंसा की ही विजय होती है। डाकू का मानवत्व उसके पशुत्व पर हावी हो जाता है।

कवि ने डाकू का वर्णन करते हुए यह भी संकेत दिया है कि डाकू केवल जंगलों में ही नहीं रहते, वरन् साधु कहलाने वाले समाज के शोषक भी डाकू हैं। निम्न पंक्तियों में समाज के शोषकों पर तीखा प्रहार किया गया है :

"उड़ाकर मेरे ऊपर कीच
मुझे कहते फिरते जो नीच,
जरा देखें वे अपनी ओर,
सुधार्मिकता वह अपनी घोर।
हड़पकर औरों के घर-व्दार,
नहीं लेता जो कभी डकार, ...
उसीके घर में एकाएक
हुआ यह कैसा भावोद्रेक।"[२]

---

१. आर्द्रा : 'डाकू' कविता : पृ. २९
२. वही : -"- -"- : पृ. २८-२९

'अग्नि परीक्षा' भी गांधीदर्शन से प्रभावित है। हालाँकि गुण्डों ने सुभद्रा का अपहरण करके उसे समाज की दृष्टि में अपमानित एवं हेय बना दिया है, किंतु सुभद्रा के मन में उन पीड़कों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न नहीं होता। वह तो अश्रुपूर्ण शांत स्वर से पीड़कों के लिये भी परमेश्वर से क्षमा मांगती है और स्वयं भी उसे क्षमा कर देती है :

"गद्गद् हो, साश्रु, शांत स्वर से
पीड़कों के अर्थ क्षमा माँग परमेश्वर से,
और निज ओर से स्वयं ही क्षमा-दान कर,
आई थी सुभद्रा निज स्थान पर।"[१]

अपहरणकर्ता के प्रति भी क्षमाभाव प्रदर्शित करना गांधीनीति के अनुकूल है। सुभद्रा का पति गुलाबचंद प्रारंभ में अपहृत सुभद्रा को अपनाने से इनकार करता है तथा उसे अपमानित कर घर से निकाल देता है। सुभद्रा पति व्दारा प्रताड़ित किये जाने पर चुपचाप जल समाधि लेकर अपनी पवित्रता की परीक्षा देती है। उसके मौन कष्ट सहन से अंतत: पति का हृदय परिवर्तित हो जाता है। पत्नी का करुण अंत देखकर उसे अपने कुकृत्य पर पछतावा होता है। वह मृत पत्नी को याद कर विलाप करता है :

"लौट आ, सुभद्रा, तुझे जाने नहीं दूँगा मैं,
घातक विधर्मियों का पातक न लूँगा मैं,
वार कर तुझ पर,
झेलूँगा समाज भी जो चोट करे मुझ पर।"[२]

गुलाबचंद के पश्चाताप में ही कवि का उद्देश्य सफल हो गया है। 'आत्मोत्सर्ग' मे भी गांधी विचारधारा का सफल अंकन हुआ है। कवि का उद्देश्य हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य को अपनी वाणी व्दारा शांत करना रहा है।

---

१. आर्द्रा : 'अग्निपरीक्षा': कविता : पृ. ७२
२. वही : -"- -"- -"- : पृ. ७४

इसी कारण इस में प्रेम और एकता का संदेश तथा सर्वहित का प्रतिपादन मिलता है।

इसमें अहिंसात्मक मार्ग से ही अन्याय के प्रतिकार का प्रयत्न करने का भाव परिलक्षित होता है :

"अपने भाई के ही ऊपर
यदि तुम जोर जमाओगे,
तो अन्याय मिटाने जाकर
क्या यह न्याय कमाओगे ?"[1]

गुप्तजी हिन्दुओं के समान मुसलमानों को भी अपना भाई ही मानते थे। अत: उन्हें यह सहय नहीं था कि जातीयता के चक्कर में पड़कर हम व्यर्थ का खून खराबा करें एवं अपने ही भाइयों के प्रति जुल्म ढायें। वास्तव में हिंसा गौरवपूर्ण कार्य नहीं है, यह तो निंदनीय कार्य है। हत्या करना तो क्रूरों का कर्म है। सच्चे शूरों का कर्तव्य तो रक्षा करना है।

"हत्या में वीरत्व नहीं है,
यह तो है क्रूरों का कर्म,
निधन नहीं, रक्षा करना ही
है सच्चे शूरों का धर्म।"[2]

स्पष्ट है कि कवि प्रतिघातात्मक भावना को अनैतिक मानता है। प्रतिघात की यही भावना मनुष्य को पशु बना डालती है। इसी भावना से प्रेरित हो हिन्दूकुल ने अपने मस्तक पर कालिख पोतली। हिन्दू धर्म सदैव असहायों का सहायक बना है। मानवता की सेवा के इस सर्वोच्च आदर्श के कारण ही हिन्दूधर्म को महत्ता प्राप्त हुई है। किंतु आज हिन्दुओं के हाथ से ही हिन्दुत्व के मुख पर कालिख पुतते देख कवि को अत्यंत क्षोभ होता है।

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. १७
२. वही : पृ. ४०

गुप्तजी हिंसाभावना को नष्ट करने में अस्त्रशास्त्रोंका प्रयोग अनुचित मानते हैं। उनका विचार है कि हिंसा का शमन प्रतिपक्षी के पश्चाताप से ही भस्मीभूत हो सकता है। अत: अहिंसक व्रतधारी को अहिंसा द्वारा प्रतिपक्षी के हृदय को परिवर्तित कर उसमें पश्चाताप की भावना को जगाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि तुम किसी के प्रति द्वेष करोगे तो बदले में द्वेष ही मिलेगा और प्रेम करोगे तो प्रेम ही मिलेगा :

"प्रेम करोगे प्रेम मिलेगा,
द्वेष करोगे तो विद्वेष,
उसी एक के बंदे हैं सब,
मन से दूर करो यह त्वेष।"[1]

जब सभी उसी एक ईश्वर की संतान है, तब हमें मन से इस विद्वेष को पूर्णतया त्याग कर प्रेम का मार्ग अपनाना चाहिए, यही नीतियुक्त है। हम सदियों से आपस में झगड़ते हुए बारंबार एक-दूसरे पर वार करते रहे हैं। हमने अब तक लड़ झगड़कर बहुत सहन किया है और यदि हमारा यही रुख कायम रहा तो भविष्य में भी हमें बहुत कुछ सहना होगा। अत: उचित यही है कि हम जातीय बंधनों से मुक्त होकर वैर को त्याग कर परस्पर प्रेम पूर्ण व्यवहार करें।

इसमें सत्याग्रही के निर्भय रूप की झाँकी सर्वत्र विद्यमान है। सत्याग्रह पालन के लिये नैतिक बल अपेक्षित है। "सत्याग्रह नैतिक शस्त्र है और उसका आधार है शरीर शक्ति की अपेक्षा आत्मशक्ति की श्रेष्ठता।"[2] अपनी इसी नैतिक शक्ति के बलपर क्षीणकाय विद्यार्थीजी हिन्दुओं को मुसलमानों पर अत्याचार करने से रोक देने में सफल हुए। उन्होंने मुसलमानों की जान बचाने के प्रयत्न में अपने जीवन को भी संकट में डाल दिया तथा

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. २१
२. सर्वोदय - तत्त्व-दर्शन : गोपीनाथ धवन : पृ. १२९

उनके दृढ़ निश्चय ने विपक्षियों का ह्रदय परिवर्तन कर दिया। "महात्मा गांधी के चरित्र में भी यह विशेषता प्रचुरमात्रा में थी। सत्यप्रेम और शांत मौन कष्ट सहन द्वारा जब जब आवश्यकता हुई, निडर होकर हिंसा के मुख में जाकर उन्होंने बहुत से दुराग्रही प्रतिपक्षियों का ह्रदय परिवर्तन किया।"[१] विद्यार्थीजी के आत्म बलिदान से हिंसा की अग्नि शांत हो गई। यहाँ प्रतिशोध की भावना नहीं जगती क्योंकि विद्यार्थीजी ने अपने व्यक्तित्व की गरिमा से सबके ह्रदय का परिमार्जन कर दिया है :

"चल कर क्रूर मार्ग पर उसके
निकट नहीं जाओगे तुम,
पथ है उसका अमर प्रेममय,
उसे वहीं पाओगे तुम।"[२]

गांधीजी का विरोध अन्याय से था, न कि अन्यायी से। "नोआखलीमें किसी मुसलमान हत्यारे ने गांधीजी से नरियल का पानी पीने का अनुरोध किया था, किंतु गांधीजीने यह कहकर उसकी प्रार्थना ठुकरा दी थी कि पापी के काँपनेवाले हाथ किये गये पाप का परिचय दे रहे हैं। अत: उसके हाथ का जल ग्रहण करना अनुचित है। बापू के इन वचनों का उस पापी पर गहरा प्रभाव पड़ा था और उसका ह्रदय परिवर्तित हो गया था।"[3] जब किसी हिन्दू ने विद्यार्थीजी से जल ग्रहण करने की प्रार्थना की थी, उस समय उन्होंने भी नि:संकोच कहा था :

"निधन किया है निर्दयता से
कितने दीन - अनाथों का,
कैसे पियूँ यहाँ यह जल मैं
रक्त-भरे इन हाथों का ?"[४]

----

१. सर्वोदय - तत्व-दर्शन : गोपीनाथ धवन : पृ. १३४
२. आत्मोत्सर्ग : पृ. ६८
३. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डा. शिवप्रसाद मिश्र- पृ. १००
४. आत्मोत्सर्ग : पृ. ५१

गुप्तजी की दृष्टि में दण्ड का पात्र वही है, जिसने कुछ अपराध किया हो। किसी निरपराध व्यक्ति को दण्डित करना नीति के विरुद्ध एवं असंगत कार्य है। उन्होंने इस बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है :

"आततायियों को मारो तुम,
इसमें उतना दोष नहीं,
पर इन अबलाओं पर भी क्या
समुचित है यह रोष कहीं ?"[1]

उन्हें यह सह्य नहीं कि हत्यारे व गुण्डे लोग स्वच्छन्द घूमते रहे और मौज-मस्ती मनावे और निर्दोष निर्बल असहाय लोग व्यर्थ में पीस दिये जावें। इस तरह 'आत्मोत्सर्ग' में व्देष को त्याग कर प्रेम का पावन पथ अपनाने का आग्रह ही प्रकट हुआ है।

'पाथेय' में भी आत्मपीड़ा के प्रति कवि का आग्रह प्रकट हुआ है। 'स्नेहरीति' कविता में कवि ने दीपक के माध्यम से नि:स्वार्थ सेवा, प्रेम एवं कष्ट सहन के महत्व को प्रदर्शित कर हमें दीपक के समान नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने के लिये प्रेरित करना चाहा है। जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर स्नेहपूर्वक अपना प्रकाश वितरित करता है, उसी प्रकार हमें भी अपने जीवन का उत्सर्ग कर दूसरों को सुख प्रदान करना चाहिए। कवि का विश्वास है कि हमारी निष्काम सेवा एवं त्याग भावना ही दूसरों के ह्रदय में पश्चाताप की भावना को जागृत कर उसका ह्रदय परिवर्तित कर सकती है। अत: प्रेम एवं आत्मकष्ट सहन का मार्ग अपनाना ही उचित है।

'शुभागमन' में कवि ने गांधीजी व्दारा प्रवर्तित अहिंसात्मक आंदोलन के प्रभाव को ही चित्रित किया है। गांधीजी ने जनता को अभयदान देकर भयमुक्त बनाया और पददलित मानवता को उच्च आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनके आगमन से हिंसा के बादल छिन्नभिन्न

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ० ४३

करना चाहा है कि मनुष्य किस प्रकार महत्वाकांक्षा के चक्कर में फंसकर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये छलछद्म अपनाता है। एक विदेशी नदी के तट पर एक बालक के हाथ से बलपूर्वक पारस छीन लेता है। वह पारस पाकर प्रसन्न हो घर लौटता है। परंतु पारस पुन: लोहे में परिवर्तित हो जाता है। इससे सिध्द हो जाता है कि साधन की उत्कृष्टता ही साध्य की कसौटी है। निम्न पंक्तियों में साधन की शुध्दता के प्रति आग्रह प्रकट करते हुए गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन के औचित्य का भी समर्थन किया गया है :

"शुचि-साधन से सिध्द उसे जिस दिन कर लेंगे,
मनचाही चिर हेमराशि से घर भर लेंगे।"[1]

कवि जंगली डाकुओं को भी पशु के समान हिंस्त्र मानता है। यदि मनुष्य हिंस्त्र पशुओं से बच भी जाय, तो भी वह मनुष्य से नहीं बच सकता :

"वन-पशु ही क्या यहाँ अकेले भयकारक हैं,
वन्य दस्यु तो और विकट नर संहारक हैं।
पशु से बच भी जायँ, बचा है कौन मनुज से ?
आह! मनुज के लिये मनुज है क्रूर दनुज से।"[2]

'ग्वालिनें' कविता में कवि ने सच्ची भक्ति की ओर संकेत करते हुए प्रेम के महात्म्य एवं उसके उदात्त स्वरूप का ही अंकन किया है। प्रेम में स्वार्थ के स्थान पर त्याग की अपूर्व भावना होती है। इसीलिये सच्चा प्रेम करनेवाली ग्वालिन धन का मोह त्याग कर अपना सर्वस्व कृष्ण पर न्यौछावर कर देती है और प्रिय के स्मित की अमूल्य निधि पाकर अपने को धन्य समझती है।

'बापू' कृति में सत्य, अहिंसा सिध्दांत का तात्त्विक विवेचन अन्य कृतियों की अपेक्षा अधिक हुआ है। कवि ने गांधीजी को सत्य अहिंसा के अमृत से भारत का उध्दार करते हुए चित्रित किया है::

---

१. मृण्मयी : 'पुनरपि' कविता : पृ. १२३
२. वही : -"- -"- : पृ. ११०

"गुँजा कहाँ मोहन - मधुर मंत्र ?
उर्जस्वित, सत्य के अहिंसा के अमृत से,
मुक्त, छल-छद्म के अनृत से।"[१]

इसमें गांधीजी के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन करते हुए उनके आत्मज्ञान तथा आंतरिक शक्ति की ओर संकेत किया गया है। भौतिक बल के अभाव में बापू ने देश को आत्मिक शक्ति का महत्व ही समझाया :

"भीत न हो, भीत न हो डर से"
उसका पुनीताह्वान आ रहा है भीतर से
"धाम यह विस्तृत है धूममय,
भीतर नहीं है अभी वैसा भय,
छिन्न कर भीति-जाल
आओ हो, निकाल लें कहाँ है वह माँ का लाल।"[२]

गांधीजी का जीवन दर्शन विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं से प्रभावित रहा है :

"बुध्द से मिला है परमार्थ-भाग,
ईसा से नरानुराग,
हिंसा-त्याग धीर महावीर-से वरद से
दृढ़ता मुहम्मद से।"[३]

स्पष्ट है कि गांधीजी की अहिंसा नवीन वस्तु नहीं है, वह तो भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों पर ही आधारित है। गांधीजी ने केवल उसे नवीन संदर्भों में जनता के सम्मुख रखा है। उनका मंत्र था 'सत्य की जीत'। उनका विश्वास था कि अहिंसात्मक युध्द व्दारा ही सत्य की जीत हो सकती है। इसीलिये उनके शुध्द स्वर में अहिंसा गीत गूंजता था :

----

१. बापू : पृ. १८
२. बापू : पृ. ७३
३. बापू : पृ. ६६

"धन्य वह कालतीर्थ कालातीत,
बोला जहाँ नारायण नर में,
'सत्यमेव जयते' अहिंसा गीत
गूँजा है जहाँ से शुध्द स्वर में।"[1]

गांधीजी देश की स्वतंत्रता के निमित्त हिंसा का आश्रय लेने के स्थान पर पूर्णतया अहिंसा पालन में ही मानव और विश्व का कल्याण देखते हैं। गुप्तजी भी भारत की स्वतंत्रता के निमित्त गांधीजी की अहिंसा नीति को सर्वथा उपयुक्त मानते हैं। निम्न पंक्तियों में अहिंसा के प्रति कवि की आस्था प्रकट हुई है :

"आत्मजयि, पावन तुम्हारे आत्मशासन में,
पाप-ताप नाशन में,
क्षत्रियत्व दुर्निवार शौर्य समन्वित है,
अस्त्र,शस्त्र हीन भी अचिन्तित, अजित है।"[2]

कृति का मूल संदेश है प्रेम, आशा और विश्वास जिसके सहारे कठिनाइयों का सामना किया जा सकता है तथा मनुष्य की समस्त समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है। आज समाज विनाश के कगार पर खड़ा है, भौतिकता उसे पीसे डाल रही है। इस स्थिति में प्रेम ही उसकी समस्या को हल कर सकता है :

"प्रेम है स्वयं ही क्षेम,
प्रेम की ही अंत में विजय है,
प्रेम रत्न नित्य ज्योतिर्मय है;
फैला दो उसीका मृदु दीप्ति-हास
हिंसा के तमिस्त्र का स्वयं ही ह्रास।"[3]

---

१. बापू : पृ. २०
२. वही : पृ. ७६
३. वही : पृ. ४३

इसीलिये गांधी विचार दर्शन में अहिंसक प्रतिरोध को महान् अस्त्र के रूप में अपनाया गया है। सत्याग्रह में नैतिक बल और निःस्वार्थ भावनासे ही विरोधी के हृदय को परिवर्तित किया जाता है। महात्मा गांधी इन्हीं गुणों से संपन्न थे इसीलिये उन्हें अपने कार्य में सफलता प्राप्त हुई।

गांधीजीने सत्याग्रह सिध्दांत का केवल निरूपण ही नहीं किया था वरन् उसे व्यवहारिक रूप भी प्रदान किया था। इसीलिये विरोधियों के हृदय जीतने में उन्हें सफलता मिली :

"जाग-जाग उठती तरलता
पर को स्वकीय कर लेने को,
निज को विकीर्ण कर देने को
नीचे और ऊपर दिशाओं विदिशाओं में,
तामस निशाओं में।"[१]

गांधीजी अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिये सद्भावना और जीव-ऐक्य के प्रति आस्थावान थे। अहिंसा के लिये क्रोध एवं राग व्देष का सर्वथा अभाव होना चाहिए। "अहिंसक प्रतिरोधी यही प्रयत्न करता है कि भय, क्रोध, हानि की आशंका और प्रार्थक्य भावना दूर हो और सुरक्षितता, एकता, सहानुभूति और सद्भावना उत्पन्न हो।"[२]

गुप्तजी ने भी छलछद्म से रहित तथा क्रोध एवं रागव्देष से मुक्त गांधीजी के इसी आध्यात्मिक स्वरूप की ओर संकेत किया है, जिसके बल पर उन्हें अहिंसात्मक प्रतिरोध में पूर्ण सफलता मिली :

धन्य, तुम धन्य हो धरा के लाल।
छद्म-छल के अबोध,
वीत राग वीत क्रोध।"[३]

---

१. बापू : पृ. २५-२६
२. दि पावर ऑफ नॉन वायलैंस का हिन्दी रूपांतर : रीचार्ड बी. ग्रेग पृ. ३६-३७
३. बापू : पृ. २८

हिंसा में घृणा, क्रोध एवं बदले की दुर्भावना रहती है, जबकि अहिंसा के लिये प्रेम एवं करुणा की आवश्यकता होती है। प्रेम से प्राप्त की गई वस्तु स्थायी होती है। यही कारण है कि अहिंसक व्रतधारी बापू ने विश्व की मानवता को प्रेम का पावन मंत्र पढ़ाया। इसमें गांधीजी के प्रेम और निरस्त्रता जैसे पवित्र साधन की ओर संकेत किया गया है :

"प्रेम की पताका लिये कर में
निर्भय निरस्त्र बढ़ा सत्य के समर में।"[1]

गांधीजी व्यक्तिगत सुख के स्थान पर समष्टिगत सुख संपादन का ही विशेष आग्रह रखते थे। अत: पराये भी उनके लिये अपने हो गये। प्रतिपक्षी के प्रति भी प्रेम व उदार भावना के आग्रह के कारण ही समस्त विश्व ने उन्हें अपना पथ प्रदर्शक स्वीकार किया।

गांधीजी ने अहिंसा का मनसा, वाचा, कर्मणा पालन करने पर जोर दिया है। गुप्तजी की यह उक्ति बापू के संदर्भ में यथार्थ ही प्रतीत होती है :

"वाणी के मंदिर में आकर
कर्म स्वयं झंकृत है आज;
गिरा अर्थ से, अर्थ गिरा से
सादर समलंकृत है आज।"[2]

गांधीजी की दृष्टि में कारागार अबंधन या मुक्ति का द्वार है। यहाँ मुक्तिबीज क्रूर भीत्ति भूमि को भेदकर अंकुरित हो फूट पड़ता है। गांधीजी की इस वाणी से प्रेरित होकर असंख्य नर नारियों ने भी सर्व सुखकारी मंगल की इच्छा लेकर उन्हीं के पदचिन्हों का अनुसरण किया। इस तरह जो कारागार घृण्य समझा जाता था वह मुक्ति और अबंधन का द्वार बन गया।

---

१. बापू : पृ. ५५
२. वही : पृ. ९

बापू की विश्व बंधुत्व भावना में संकुचितता को कतई स्थान नहीं है। उनके प्रेम में सबका कुशल क्षेम निहित है :

"उसका उदार दान
सबको दिये है प्रेम
सबका लिये है क्षेम;
संकुचित बंधन का
इसमें नहीं है लेश।"[१]

इस प्रकार 'बापू' में सर्वत्र सत्य, अहिंसा का ही विवेचन हुआ है। "दैनिकी" में संकलित कविताओं में कविने मानवता के पतन का चित्र अंकित कर नैतिक मूल्यों के महत्व को ही प्रतिपादित किया है। तथा हिंसा को त्याग कर अहिंसक साधनों को अपनाने का आग्रह प्रकट किया है।

'विकलांग' में कवि का युध्द जन्य संहार के प्रति क्षोभ प्रकट हुआ है। कवि जब दैनिक पत्र में एक हजार लोगों के घायल होने व मरने के समाचार पढ़ता है, तो उसके मनमें उन हताहत जीवों के प्रति सहानुभूति एवं वेदना जाग उठती है। कवि का मानवतावादी स्वर गांधीदर्शन का ही द्योतक है। 'ध्दकक्ष' में कवि ने गौतम बुध्द की चर्चा करके तत्कालीन अशांति पूर्ण जीवन में शांति की स्थापना पर बल दिया है। 'दुर्लभ' कविता में कवि ने सत्य मरण के लिये अहिंसा मार्ग को ही उचित ठहराया है।

'विस्मरण' में मनुष्यत्व को भूलकर पशुता को प्राप्त एक बालक का चित्र अंकित कर कवि ने यही दर्शाना चाहा है मानव किस प्रकार अपनी विवेक बुध्दि को नष्ट कर अपनी परंपरा एवं मूलधरा को विस्मृत कर अबोध बन गया है। मनुष्य पशुतापूर्ण प्रवृत्तियों में ही संलग्न रहने लगा है। कवि मनुष्य की सुषुप्त प्रज्ञा को पुन: जागृत करना चाहता है। 'अण्डमान' में मनुष्य की तीव्र व्यथा का चित्रण किया गया है। गांधी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण कवि शारीरिक दण्ड या देश निष्कासन के विरुध्द थे।

---

१. बापू : पृ. ६८

अंग्रेजों के शासनकाल में स्वतंत्रता संग्राम के अनेक सेनानियों एवं घोर अपराधियों को कालापानी की सजा दी जाती थी। उन्हें देश से निष्कासित कर अण्डमान और निकोबार इन दो द्विपों पर भेज दिया जाता था। अंग्रेजों ने वहाँ जेल बनवाई थी, जहाँ अपराधियों को घोर नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। अण्डमान में जीवन मृत्यु से भी अधिक निकृष्ट कोटि का होता था। कवि ने इसी ऐतिहासिक संदर्भ को लेकर प्रस्तुत कविता में देश से निष्कासित एक मनुष्य की व्यथा का चित्र अंकित किया है। तथा यह भी प्रकट किया है कि आज के दु:ख दारिद्र्य से उत्पीड़ित व्यक्ति के लिये अपना देश ही अण्डमान बना हुआ है :

"राष्ट्र राष्ट्र का निष्कासन है निज के छोटेपन में,
अंडमान हो रहे प्रतिष्ठित देश-देश जन-जन में।"[१]

कवि देश निष्कासन एवं शरीरदण्ड को हिंसात्मक मानता है और उसका अंत करना चाहता है।

'यंत्रपुरी' में आज के विषाक्त जीवन का चित्रण कर कविने यह प्रकट करना चाहा है कि वैज्ञानिक सभ्यता के इस युग में मानव जीवन सर्व सुख साधन संपन्न होने पर भी क्षुब्ध है। आज के इस यंत्रचालित दमघोटू जीवन के कारण रोग की मात्रा भी बढ़ गई है। वैज्ञानिक क्रांति से जहाँ लाभ हुए हैं, वहाँ उसके बहुत से दुष्परिणाम भी आये हैं।

'स्मरण' में कवि ने मानवता के पतन, डाकुओं के हिंसात्मक कृत्य, दुखी मानवता और यंत्रीकरण के कारण होनेवाले विध्वंस और युध्द की विनाश लीला के प्रति क्षोभ प्रकट किया है :

"सुनता हूँ जब, विस्फोटित है
चहुँ ओर भयंकर महानाश,

----

१. दैनिकी :'अण्डमान': पृ. २३

मैं रोक नहीं रखने पाता
यह लघुत्तम अपना दीर्घश्वास।"[1]

'अबोध कलह' में कवि ने मनुष्य के अहंभाव एवं बड़प्पन की भावना को प्रदर्शित कर तलवार आदि मारक शस्त्रों के प्रयोग को अनुचित बतलाया है :

"किया अरे क्या तूने यह ओ पागल,
यह कृपाण है बहुत बड़ों को, हम सबके सब दुर्बल।
हम सब हैं अबोध लघुदेही,
अंग काट लेंगे निज के ही।"[2]

अहिंसावादी होने के कारण कवि मारक शक्ति के प्रबल विरोधी हैं। आज मनुष्य के आदर्श बदल गये हैं। उसका लक्ष्य सर्प, गीध, भेड़ियों के समान दूसरों पर प्रहार करना ही रह गया है। वह मानवता के आदर्श के प्रति पूर्णतया उदासीन हो गया है। कवि ने इस विध्वंसकारी विजयोल्लास को निस्सार बताते हुए मानवता के आदर्श के प्रति उदासीन मानवजाति पर व्यंग्य किया है :

"दीख रहा है मनुज भी नव तनु-साधन-लीन,
अब उसके आदर्श हैं, भुजग, गीध, वृक, मीन।"[3]

आज मानव जीवन में सर्वत्र संकीर्णता एवं बैर विरोध तथा परापहरण की भावना दीख पड़ती है। जिससे मानव जीवन पूर्णतया अरक्षित हो गया है। इस बैर विरोध को प्रेम के व्दारा ही नष्ट किया जा सकता है। कवि मानवता के पतन पर दुःखी अवश्य है, फिर भी इस वसुधा से उसे अत्यधिक प्यार है। 'आश्वस्त' कविता में कवि ने धरती के प्रति आस्था प्रकट करते हुए यही कहा है कि धरती की मिट्टी मानव में दुर्गुण उत्पन्न नहीं करती, स्वयं मनुष्य ने ही स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर अपने महत्त्व को कम कर लिया है।

---

१. दैनिकी : 'स्मरण' कविता : पृ. ३१
२. वही : 'अबोध कलह' : पृ. ४६
३. वही : 'शरीर साधन' : पृ. ५०

गांधीवाद एक आध्यात्मिक दर्शन है। इसमें भौतिकवादी तामसी वृत्ति की निंदा की गई है। इसी तामसी वृत्ति के कारण आध्यात्मिक मूल्यों की अवहेलना हो रही है :

"शत मुख होकर यहाँ ले रहे दशमुख का सब नाम,
नहीं जानते, कौन कहाँ के वे वनचारी राम।"[१]

यहाँ अंग्रेजों की थोथी चाटुकारिता की निंदा की गई है और गांधीजी के तपस्वी रूप का गुणगान किया गया है। महात्मा गांधी मनुष्य के अंत:करण में स्थित प्रेमभाव में विश्वास करते हैं। इसी विश्वास के कारण सियारामशरणजी भी बधिक को दोषी नहीं मानते। उनका विश्वास है कि बधिक के मन में भी प्रेम का तत्त्व किसी न किसी अंश में अवश्य छिपा होगा। उसमें भी मानवीय संवेदना रही होगी। इसीलिये वे बधिक के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखते हैं :

"फंदा प्रथम बार जब नर का उसने खींचा होगा,
मस्तक आप किसी लज्जा से उसका नीचा होगा।
खान-पान उस दिवस हो गये होंगे-विष से उसको,
फिर फिर सम्मुख पाता होगा उस हत हुए पुरुष को।"[२]

कवि सभ्यवेश में विचरण करनेवाले हिंसक प्रवृत्ति के दुष्ट एवं दुर्मुख लोगों को भी डाकू के समान निंदनीय मानता है। जंगल में रहनेवाले डाकू एवं हिंस्त्र पशु तो पहचान में आ जाते हैं किंतु समाज में सभ्यवेश धारण किये इन डाकुओं को खोज निकालना मुश्किल है :

"यहाँ न जानें कितने कैसे हिंस्त्र जन्तु-जन दुर्मद,
सभ्यवेश में विचर रहे हैं बदल स्वरूप परिच्छद।"[3]

---

१. दैनिकी : 'शतमुख' : कविता : पृ. ५२
२. वही : 'बधिक' : पृ. ५६
३. वही : 'नव-पथ' : पृ. ६५

संक्षेप में, 'दैनिकी' की रचनाओं में कवि ने युध्दजनित विनाश एवं मानवता के पतन पर अपना क्षोभ प्रकट कर हिंसा के स्थान पर प्रेम एवं सहानुभूति को अपनाने का आग्रह ही प्रकट किया है।

'नकुल' काव्य भी गांधीजी के विचारों से प्रभावित है। इसमें निम्न एवं उपेक्षित लोगों को महत्त्व प्रदान किया गया है। दो वर्ग पारस्परिक प्रेम और सद्भावना के आधार पर ही सुखी रह सकते हैं। इसीलिये 'नकुल' में प्रेमभावना के विस्तार का आग्रह प्रकट हुआ है।

गांधीजी के समान सियारामशरणजी भी समाज में धर्म प्रतिष्ठापना के पक्षपाती हैं। समाज में शांति स्थापना के निमित्त बड़ों का छोटों के लिये स्वेच्छासे त्याग करना अनिवार्य है। त्याग की इस भावना में हृदय परिवर्तन का सिध्दांत ही परिपुष्ट हुआ है।

युधिष्ठिर के चरित्र के माध्यम से कवि का अभिप्रेत स्पष्ट हुआ है। नटनागर की बांसुरी में उन्हें अपूर्व माधुर्य एवं विश्वशांति का संदेश सुनाई पड़ता है। उनका विश्वास है कि इस दु:ख-सुख, प्रपंच एवं छलपूर्ण, गरल एवं अमृतपूर्ण वसुधा में वंशी का मधुर प्रेमभरा स्वर ही सार है। इस हिंसायुक्त विश्व में मुरली ही प्राणों का संचार कर सकती है। वहीं इस जगत् के समस्त भेद में अभेद का विश्वास भर सकती है :

"लय-स्वर हैं नि:शेष धनुष की टंकारों में,
आक्रन्दित हैं हृदय पुरुष की हुंकारों में;
वहाँ एक बस तुम्हीं अधर पर मुरली धरकर,
फूँक रहे हो प्राण-प्राण में निज प्राणस्वर।"[१]

युधिष्ठिर को मुरली की उस ध्वनि में अभय का संदेश सुनाई दिया। प्रेम के माधुर्य के अतिरिक्त अभय का यह भाव कहाँ हो सकता है? हिंसा के मूल में तो भय ही रहता है। कवि चाहता है कि सेना, शौर्य,

---

१. नकुल : पृ. १२

अस्त्रशस्त्र और आतंक में विश्वास करनेवाले क्षणभर रुककर युधिष्ठिर की भाँति सोचे। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि शस्त्रबल के प्रयोग से मनुष्य के भय में वृध्दि ही हुई है, वह कभी निर्भय नहीं हो सका है। आज हम इतने भयभीत हैं कि कोई भी प्राणी अपने को सुरक्षित नहीं समझता। युध्द प्रतिदिन पहरते सुनाई पड़ते हैं, इसीलिये समाज में शांति स्थापना के लिये शरीरबल की अपेक्षा नैतिक बल में उनका विश्वास है। उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ वीरत्व विनाश क्रिया में नहीं है :

"वर वीरत्व विनाश-क्रिया में ही क्या केवल ?
तब नर-बल कुछ और नहीं है, वह है पशुबल।"[1]

प्राणिमात्र के प्रति प्रेमभाव के कारण ही युध्दिष्ठिर मृग की हत्या की आशंका मात्र से विचलित हो जाते है।

युधिष्ठिर की अहिंसा धर्म में पूर्ण आस्था है। उनका मानना है कि युध्द से शांति की स्थापना नहीं हो सकती। इसीलिये आर्य जहाँ गाण्डीव के बल पर समाज शांति के समर्थक हैं, वहाँ युधिष्ठिर हृदय परिवर्तन, शांति और अहिंसा के अमोघ शस्त्र से विश्वशांति का स्वप्न देखते हैं। जब मणिभद्र यह कहकर कि "ऐसे पुरुष प्रवीर उदित होते हैं, कबकब इस जगती का दुरित दैन्य खोते हैं कब कब।"[2] युधिष्ठिर से अपना विचार बदलने का आग्रह करता है, तब युधिष्ठिर मणिभद्र की बात का खण्डन कर अहिंसा का ही समर्थन करते हैं। युधिष्ठिर शांति एवं प्रेम के मार्ग को ही श्रेयस्कर समझते हैं :

"धरना होगा आत्मदान के पावन मग को,
नवजीवन परिपूर्ण जिन्हें करना है जग को।"[3]

दूसरों के प्राणों की रक्षा करना ही सच्चे शूर का धर्म है। तभी तो युधिष्ठिर बड़ों के धर्म का मर्म समझाते हुए कहते हैं :

---

१. नकुल : पृ. १२
२. वही : पृ. १०७
३. वही : पृ. ११२

"छोटे के भी लिये बड़े से बड़ा समर्पण –
किया जाय जब, तभी धर्म-धन का संरक्षण।"[1]

छोटों के लिये त्याग करना ही यथार्थ धर्म है, किंतु हो रहा है उल्टा :

"सरल तत्य यह, तदपि हाय! उलटे पर मरती,
गरल ग्रहण कर निज विरुध्द जगती आचरती
सुख सब अपने अर्थ, अन्य का शोषण, शोषण!"[2]

यहाँ शोषण शब्द का प्रयोग कर कवि ने वर्तमान स्थितिको उभारने का प्रयत्न किया है। यदि इस शोषण एवं अशांति से वसुधा का उद्धार करना हो तो उसका एकमात्र उपाय है सर्वत्र प्रेम का प्रसार करना :

"करना है यदि हमें यहाँ यह पाप निवारण,
हो अभीष्ट सर्वत्र प्रेम का पूर्ण प्रसारण,
करना होगा बड़ा त्याग निज सुखजीवी को,
होना होगा स्वयं समर्पित गाण्डीवी को।"[3]

आत्मदान के इस पावन भाव से प्रेरित होकर ही युधिष्ठिर नकुल के जीवन की याचना करते हैं। उनका मानना है कि छोटों की रक्षा, उसके लिये बड़े से बड़ा त्याग ही वह मार्ग है, जिससे संसार में कभी अशांति पैदा नहीं हो सकती और काल के ऊपर सुविजय प्राप्त होती है। त्याग ही हल है, समवितरण नहीं, यहाँ यह भाव भी ध्वनित है। यह त्याग प्रेम से आप्लावित होना चाहिए।

भीम और सहदेव दस्यु प्रवृत्ति के प्राणियों के संहार में ही अपने कर्तव्य की पूर्ति समझते हैं। किंतु युधिष्ठिर अहिंसक वीरता में त्याग और क्षमा के महत्त्व को ही स्वीकार करते हैं। युधिष्ठिर के माध्यम से मणिभद्र

----

१. नकुल : पृ. ११०
२. वही : पृ. ११०
३. वही : पृ. १११

के विचारों का खण्डन कराके कवि ने त्यागमय वीरता के गौरव को ही प्रतिपादित किया है। निम्न पंक्तियों में यही क्षमा भाव प्रकट हुआ है :

"कहा युधिष्ठिर ने -"दुरंत अपराधी है वह,
तब भी जो मैं बात असंशय आती है यह,
अनुकम्पित जब महत् दोष के प्रति भी रहती,
क्षमा तभी है क्षमा, महीमंडल में महती।"[१]

युधिष्ठिर के मनमें अपने प्रतिपक्षी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। उन्हें तो यही बात चिंतित किये थी कि दुर्योधन ने व्यर्थ ही यह पाप क्यों किया - उसका हृदय इस विषदाह से निरंतर कसकता रहेगा :

"पाप-पंक में लिप्त हाय! क्यों हुए सुयोधन ?
होगा जो विषदाह अहर्निशि उन्हें हृदय में,
सोच सोचकर काँप रहा था उसके भय में।"[२]

कवि का मानना है कि जिसके मनमें दया, करुणा, स्नेह और ममता हो वही व्यक्ति औरों के दु:ख को अनुभव कर सकता है। अत: नकुल विश्वकल्याण के निमित्त सर्वप्रथम अपने को उस योग्य एवं समर्थ बनाना अपना परम कर्तव्य समझता है :

"भिदा न हो जो आप, अपर को क्या भेदेगा,
छिदा न जो निष्पाप, अपर को क्या छेदेगा"[३]

वह अपनी बँसुरी से जड़ चेतन को शक्ति का सौरभ प्रदान करना चाहता है। वेणुनाद से मानव मन की अशांति दूर की जा सकती है। इस प्रकार 'नकुल' में विश्वशांति के लिये शुध्द एवं सात्त्विक उपाय के प्रति ही आग्रह प्रकट हुआ है जो कि गांधीवादी प्रभाव को ही स्पष्ट करता है।

---

१. नकुल : पृ. २५
२. वही : पृ. १०६
३. वही : पृ. ९४

'नोआरवली' में[1] हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रति ही आग्रह प्रकट हुआ है। कवि का अभीष्ट इस ऐक्य के माध्यम से सर्वात्मवाद की प्रतिष्ठा करना ही रहा है। सहनशीलता की यह भावना हमें प्रेम और भ्रातृत्व भावना का ही संदेश देती है :

"तुम हमको, हम भी तुम्हें सहन करें सप्रेम,
दोनों को इस जोत में दोनों का है क्षेम।"[1]

कृति के प्रारंभ में मैथिलीशरणजी की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं जो एकता की ओर संकेत करती हैं :

"एक हमारे पूर्व पुरुष हैं,
एक भूमि-नभ, एक निवास,
एक अन्न-जल से निज जीवन
एक पवन में श्वासोच्छ्वास।"[2]

'ग्यारह दोहे' में ग्यारह के प्रतीक के माध्यम से हिन्दू मुसलमान की मानवीय धरातल पर अभेदता का प्रतिपादन करते हुए कवि ने यही स्पष्ट करना चाहा है कि जिस प्रकार एक एक के सम्मिलन से ग्यारह होते हैं, उसी प्रकार हिन्दू मुसलमान के संगठन से भारत शक्तिशाली बन सकता है। आज संसार अपने हाथ में तलवार से भी अधिक शक्तिशाली अस्त्र लेकर निरंतर युध्द के क्षेत्र में आगे बढ़ता जा रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में अहिंसा की अवहेलना की जा रही है। कवि का विश्वास है कि जब तक जीवन में बुध्दिपक्ष और हृदय पक्ष का सामंजस्य नहीं होगा तब तक वैर विरोध और प्रतिशोध की भावना का अंत नहीं होगा। मारक शस्त्रों के बल पर हम शत्रु के साथ सुखशांति पूर्वक नहीं रह सकेंगे। हमारी माता हमारे रक्त में पय की शुध्द प्रतीति भरती है, उसकी संतान होने के नाते हमारे लिये यही उचित है कि हम वैरभाव को प्रेम में परिणत कर दें, इसीमें हमारी विजय और भलाई है।

----

१. नोआरवली में : 'ग्यारह दोहे' : पृ. १४
२. वही : भूमिका के रूप में लिखित कविता से उद्धृत

गुप्तजी का मानना है कि वैर की ज्वाला को भड़काकर हम कभी शांति की स्थापना नहीं कर सकते। आग से आग और वैर से वैर का शमन नहीं होगा। अंत: कवि वैर के शमन के लिये मैत्री, करूणा और प्रेम के मार्ग को अपनाने का आग्रह ही प्रकट करता है :

"दग्ध हो रहा वहाँ उधर का जिससे निज भू-भाग,
बुझा सकोगे यहाँ न उसको यहीं लगाकर आग।
तेरे बोधि-वचन अंकित हैं जन-मन में अद्यापि,
अनल अनल से, वैर वैर से बुझता नहीं कदापि।"[1]

गुप्तजी का प्रेम संकीर्ण नहीं है, गांधीजी के समान उनके मनमें भी संपूर्ण प्राणिजगत के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति की भावना है। 'नोआखली में' कुत्ते को अधीर एवं व्याकुल हो रोते हुए देख उन्हें दु:ख होता है। वे हत्यारों की निर्ममता पर तीखा प्रहार करते हुए उन्हें पशु से भी निकृष्ट बताते हैं :

"पशु रे, तेरी इस वाणी को
कौन करेगा हृदयंगम ?
हत्यारों के कान नहीं हैं,
उनमें निर्मम ही निर्मम !"[2]

यहाँ कवि ने मानवीय करूणा का प्रसार पशुओं तक में दिखाकर हिंसा की निंदा की है।

'जयहिन्द' में सर्वजन हिताय की गांधीवादी भावना का निरूपण कवि ने किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये गांधीजीने अहिंसात्मक आंदोलन का सहारा लिया था। इस प्रकार सदुद्यम एवं शुध्द साधन व्दारा ही भारत को स्वतंत्रता का धन प्राप्त हुआ :

---

१. नोआखली में : 'बिहार के प्रति' : पृ. २७
२. नोआखली में : शीर्षक कविता : पृ. ४४

"भारत है, तेरा यह जय पर्व
आया नहीं करके प्रतिष्ठा पुण्य तेरा खर्व । . . .
अपनी स्वतंत्रता के घन को
प्राप्त किया तूने सदुद्यम से
एकरस अद्भुत अपूर्व पराक्रम से ।
तेरा मार्ग था न किसी डाकू का;
छिपकर पीछे से चलाये गये चाकू का
काम न था तुझको ।"[१]

सविनय अवज्ञा आंदोलन में साधन और साध्य की पवित्रता का पूर्ण सामंजस्य था। इसमें कहीं भी छल या विश्वासघात नहीं था। वे तो केवल अधिकारों की माँग की ओर ही संकेत करते थे। निम्न पंक्तियों में लक्ष्य और साधन की पवित्रता की ओर ही संकेत किया गया है :

"तेरा युध्द
लक्ष्य और साधन में एक-सा रहा विशुध्द,
जिसमें विराम न था तुझको ।"[२]

गांधीजी की इस युध्दनीति में जहाँ अन्याय का अहिंसक प्रतिकार किया गया वहीं वे स्वेच्छा से विपक्षी के प्रति भी प्रेमपूर्ण व्यवहार करते रहे। भारतीयों की इस अहिंसक नीति के परिणाम स्वरूप ही अंग्रेजों का ह्रदय परिवर्तन हो गया : "जागा शत्रु में से मित्र सहजात, अंधकार में से जिस भाँति उठता है प्रात"[३] इन पंक्तियों में इसी ओर संकेत किया गया है। गांधीजीका कहना था कि सत्याग्रह में कभी सत्याग्रही की हार नहीं होती। सत्याग्रह में होनेवाली पराजय भी विजय के समान है। इसीलिये तो गुप्तजी ने लिखा है :

"लेकर सुबंधु भावना की समुज्वलता
मैत्री के पवित्र प्रिय प्रण में

---

१. जयहिन्द : पृ. ९-१०
२. वही : पृ. ९-१०
३. वही : पृ. ९

साथी है हमारा इस आज के भुवन में;
आज का इसीलिये, हमारा नव चक्रकेतु
उसके लिये भी नहीं हार हेतु।"[1]

सियारामशरणजी श्रेष्ठ वीरों के लिये आत्मकष्ट सहन का मार्ग ही उपयुक्त मानते हैं :

क्षति वर वीरों के लिये अनिन्द्य।
व्रण ही आभूषण हैं, शूरों के, ...
चोट के बिना क्या जोत खिलती ?"[2]

गांधीजी के समान सियारामशरणजी भी विश्वशांति स्थापना के समर्थक हैं। भारत ने विश्वशांति स्थापना के अपने महत् उद्देश्य को लेकर ही असंख्य कष्ट सहे हैं। उसने कभी दूसरों पर प्रहार करने का प्रयत्न नहीं किया :

"हाथ नहीं तेरा उठा एक बार
घात करने के लिये पर का;
तूने किया घोषित भुजा प्रसार
एक ही कुटुम्ब विश्व भर का।"[3]

इन पंक्तियों में भारत की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिध्दांत की ही पुष्टि हुई है। भारत का ध्येय संपूर्ण धरातल का ध्येय है तथा भारत के हित में ही सबका हित सुरक्षित है यही भाव इसमें प्रकट हुआ है।

'अमृतपुत्र' में ईसा की अहिंसा भावना तथा उनकी दिव्य आत्मशक्ति के व्दारा सामरी के हृदय परिवर्तन का चित्र अंकित किया गया है। ईसा की वेदना और मर्मांतक पीड़ा को कवि ने तत्कालीन मानवता की व्यथा के प्रतीक रूप में चित्रित किया है तथा उनकी शांति स्थापना के प्रयासों की भी चर्चा की है।

---

१. जयहिन्द : पृ. ८-९
२. वही : पृ. ११
३. वही : पृ. १४

'अमृतपुत्र' में ईसा का अहिंसात्मक स्वरूप ही मुखरित हुआ है। ईसा के अंतिम शब्द उनकी अहिंसा शक्ति का ही परिचय देते हैं :

"कर क्षमा उनको पिता, तू कर क्षमा;
कर रहे क्या, वे नहीं यह जानते।"[1]

ईसा मन, वचन और कर्म तीनों दृष्टियों से दिव्य थे। बापू वचन और कर्म में सामंजस्य चाहते थे। कवि ने ईसा के चरित्र की इसी विशेषता की ओर संकेत किया है :

"कर्म में मुखरित तुम्हारे हैं वचन।"[2]

'अमृतपुत्र' में ईसा का करुणा दर्शन भी अंकित है। अनेक प्रकार से आहत होने पर भी ईसा के मुख मण्डल पर असीम तेज एवं आततायियों के प्रति क्षमा भावना ही निहित है। वे आततायियों के द्वारा दिये जानेवाला प्रपीड़न मौन रह कर सहते हैं :

"यह प्रपीड़न, यह प्रकोप, प्रहार यह,
भीड़ का औध्दत्य, उसके दुर्वचन,
ईसु सब कुछ सह रहे हैं मौन रह।"[3]

अहिंसावादी होने के कारण कवि का मन हिंसा के भीषण रूप को देखकर द्रवित हो उठता है। उन्होंने अपनी प्रत्येक कृति में मानव की हिंस्त्र प्रवृत्ति पर प्रहार किया है। निम्न पंक्तियों में हिंसा की निंदा की गई है :

"ईसु दुर्बल हैं ? - अरे ओ हिंस्त्र रे!
धर्म तेरा और तेरा न्याय वह
क्या यही है, देखता हूँ मैं जिसे ?
निशि तिमिर में आप अपने को लुका

---

१. अमृतपुत्र : पृ. ६७
२. वही : पृ. ७५
३. वही : पृ. ६२

कृत्य जो करते लुटेरे लोग हैं
कर रहा है इस उजाले में निलज।"[1]

'उन्मुक्त' में भी कवि का मूल उद्देश्य प्रेम और अहिंसा मार्ग के औचित्य को प्रतिपादित करना ही रहा है। कवि युध्द का प्रबल विरोधी है, क्योंकि युध्द व्दारा जनधन की भीषण हानि होती है। सुंदर नगर और भवन खण्डहर बन जाते हैं। सुकोमल बालक मृत्यु के शिकार होते हैं और लाखों नारियों पर पाशविक अत्याचार होते हैं। इस तरह युध्द मनुष्य को पशुता के स्तर पर खींच लाता है। अत: युध्द करना अनुचित है। आज का मानव समुदाय भौतिक विकास और विज्ञान की उन्नति व्दारा कितना स्वार्थी, दम्भी, नीच एवं घृणित रूप ले रहा है यह बताने के लिये कवि ने 'शयन कक्ष' शीर्षक कविता में बालक सुलोचन के प्रसंग को हमारे सामने रखा है। कवि का मूल उद्देश्य हिंसक शक्तियों की निस्सारता प्रकट करना तथा अहिंसक शक्तियों का मूल्य दर्शाना ही रहा है। पुष्पदंत और गुणधर के चरित्र आरंभ से लेकर अंत तक इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

पुष्पदंत वीर सेनानी है। अत: कुसुमव्दीप पर आक्रमण किये जाने पर वह भयभीत नहीं होता। वह तो शत्रु के विरुध्द वीरतापूर्वक युध्द करते हुए अपनी मातृभूमि की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझता है। युध्दक्षेत्र में वीरतापूर्वक प्राणोत्सर्ग करना वह जीवन का पतन नहीं, जीवन का ऊँचापन समझता है :

"पतन! – कहाँ का पतन? आज के दिन हम जैसे
ऊँचेपन में उठे हुए हैं, ऊँचे वैसे
दीख पड़े कब कहाँ?"[2]

कुसुमव्दीप की ध्वस्त अवस्था को देखकर भी वह निराश नहीं होता। उसे अपनी सैन्यशक्ति पर भरोसा है। उसका यही दृढ़ विश्वास निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य हैं :

---

१. अमृतपुत्र : पृ. ६३
२. उन्मुक्त : पृ. ९४

"हमारा अतुल पराक्रम
अब भी है जीवंत। कहीं कोई निर्मम
कर सकता है नहीं दलित, पद-पीड़ित उसको।
जाग्रत रखते हुए नित्य निज प्राण-पुरुष को।
जूझेंगे हम।"[1]

सैनिक का कठोर व्रत पालन करते हुए भी पुष्पदंत का हृदय कोमल एवं मानवीय संवेदनाओं से युक्त है। इसी संवेदना के कारण युद्धक्षेत्र में किसी आहत सैनिक को चिल्लाता हुआ देखकर उसका हृदय करुणा से भर उठता है। यही नहीं हेमा की करुण गाथा सुनकर उसका हृदय पीड़ा से व्यथित हो जाता है।

पुष्पदंत आत्मरक्षा के निमित्त की जानेवाली हिंसा को उचित मानता है। इसीलिये गुणधर द्वारा विरोध किये जाने पर भी वह युद्ध की घोषणा करता है। वह अस्त्रशस्त्रों के प्रयोग को न्याय संगत मानता है। किंतु गुणधर प्रारंभ से ही युद्ध के प्रति उदासीन है। वह युद्ध को मानव जाति का सबसे बड़ा शत्रु समझता है। युद्ध नर को बिना विलंब किये निपट निंद्य पशु बना डालता है। युद्ध की इस ज्वाला में असंख्य लोग झुलस जाते हैं। युद्ध के इस विनाशकारी रूप से गुणधर मानवता का त्राण चाहता है, पर उसे कोई मार्ग नहीं सूझता। उसके इस कथन में युद्ध की निस्सारता को ही प्रकट किया गया है :

"जाग उठता है नया साहस हृदय में।
फिर भी न जानें किस अंतर के कोने में
कोई एक संशय हटाये नहीं हटता।
बोल उठता है वह बार बार फिर से-
"ऐसे कुछ होगा नहीं, व्यर्थ यह सब है।"[2]

आज के युग में युद्ध का प्रधान कारण ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रबल महत्वाकांक्षा है। इसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये हिंसा का सहारा

---

१. उन्मुक्त : पृ. १०१
२. वही : पृ. २७

लिया जाता है। गुप्तजीने युध्द के कारणों पर प्रकाश डालते हुए रावण की अहंकारिता की ओर संकेत किया है, जिससे वह अत्याचारी बन गया :

"सबका ही स्वामित्व करूँगा मैं, भुजबल से,
नहीं हटूँगा किसी छद्म-छल से, कौशल से।"[1]

गुप्तजी का मानना है कि हिंसा से हिंसा की अग्नि शांत नहीं होती। हिंसक उपायों से क्षणिक शांति भले ही स्थापित हो जाय किंतु व्देष, प्रतिकार और प्रतिहिंसा की भावना तो यथावत रहती ही है। जीवन में दिखाई देनेवाली यह घृणा एवं पाशविकता जीवन का सत्य नहीं। जीवन का सत्य तो प्रेम है और सत्य की शक्ति हिंसा की शक्ति से कहीं अधिक प्रबल एवं प्रभावशाली है। माया क्षणिक है और सत्य शाश्वत है। घृणा और व्देष की भावना कुछ समय तक ही रहती है। अंत में प्रेम की ही विजय होती है :

"उस सैनिक का रुधिर वहाँ वह हृदय विमोहन
नवजीवन के अरुणराग में परिवर्तित है।
जिससे घृणा की गई, उसीके लिये नमित है
धरणी की वह सुमन-मंजरी मृदुलान्दोलित।
स्नेह-सुरभि की लोल लहर ही है उत्तोलित
इधर-उधर सब ओर।"[2]

कवि ने घृणा पर प्रेम की विजय दिखाकर गांधी दर्शन की ही पुष्टि की है।

गुणधर अहिंसा का समर्थक है। वह युध्द का प्रतिकार मारक शस्त्रों के स्थान पर अहिंसात्मक साधनों से ही करना चाहता है। "गढ़ना होगा नया वज्र हमको उसके निमित्त" इन पंक्तियों में नैतिक शक्ति के प्रति ही आग्रह प्रकट हुआ है। गुणधर वैज्ञानिक अस्त्रशस्त्रों के प्रयोग को आत्मघाती प्रयत्न ही समझता है :

----

१. उन्मुक्त : पृ. १७
२. वही : पृ. ९१-९२

"लगता मुझे तो यह, आत्मघात अपने
आयुधों से करते हमीं है स्वयं अपना।"[1]

इसीलिये वह सेना के अधिनेता पुष्पदंत के आदेश को मानने से साफ इनकार कर देता है। गुणधर इसके बदले मृत्युदण्ड को स्वीकार करना अधिक श्रेयस्कर मानता है। वह पुष्पदंत से स्पष्ट शब्दों में कहता है :

स्वीकृत नहीं मुझे
आपका निदेश यह ....
मेरा मत जानते हैं आप, फिर सुनिये, –
वैसे मारकास्त्रों का प्रयोग रणस्थल में
वीरोचित कार्य नहीं; यह है अधम की
हिंसा नीति; शूरता जो दीखती है इसमें
वह छलना है, भीरुता है छद्म रूपिणी।"[2]

मनुष्य की नैतिकता ही उसकी वास्तविक शक्ति है। नैतिकता का ह्रास होनेपर मनुष्य मानवता की कोटि से निकल कर पशुत्व की श्रेणी में पहुँच जाता है। हेमा के प्रति किये गये अभद्र व्यवहार के प्रसंग में कवि ने मानवता के ह्रास की भर्त्सना की है।

'उन्मुक्त' को सबसे मार्मिक स्थल है सुश्रूषालय। गुणधर प्रेम और करुणा में विश्वास करनेवाला है। अतः युध्द क्षेत्र में जब वह शत्रु के आहत सैनिक की पुकार सुनता है तो उसका ह्रदय करुणा विगलित हो जाता है। वह उस सैनिक की सहायता करने के लिये उसके सन्निकट जाता है। किंतु वह आहत सैनिक मौके का लाभ उठाकर उसपर वार करता है। शत्रु सैनिक व्दारा कृतघ्नता पूर्ण व्यवहार किये जाने पर भी गुणधर क्रुध्द नहीं होता। उलटे इस घटना से उसका विवेक और भी अधिक जाग्रत हो जाता है। वह उसके पतन पर अपनी मनोव्यथा को प्रकट कर उसे दया का पात्र समझकर छोड़ देता है।

---

१. उन्मुक्त : पृ. २९
२. वही : पृ. १३०-१३१

प्राणिमात्र के प्रति प्रेम की यह उदात्त भावना ही अहिंसा का मूल तत्व है।

गुणधर की अहिंसा कायरों की अहिंसा नहीं है। उसकी अहिंसा में सत्याग्रही के निर्भय रूप की झाँकी ही हमें मिलती है। वह मृत्यु भय से विमुक्त एक वीर पुरुष है। वह निरीह घायल मृत्यु के मुख में पड़े हुए लोगों पर प्रहार करना घृणित कार्य मानता है। उसकी दृष्टि में निर्बलता और असावधानी का लाभ उठाकर थोड़े से लुटेरे अचानक धावा करके विजय प्राप्त करलें तो वह वीरता का कृत्य नहीं है, वह तो कायरता है।

गुणधर का प्रथमत: युध्द में भाग लेना और बाद में तटस्थ होने में महात्मा गांधी के आदर्शों को ही प्रकट किया गया है। गुणधर को युध्द के प्रति उदासीन होते हुए देखकर पुष्पदंत उसे अपमानित करता है और विद्रोही समझकर बंदी बना लेता है और मृत्युदण्ड की सजा देता है। पुष्पदंत व्दारा भीरु, देशद्रोही और कायर कहे जाने पर भी वह शांत और स्थिर बना रहता है। वह पुष्पदंत की युध्दनीति के समक्ष अपने सिध्दांतों का विसर्जन नहीं होने देता। वह तो मौन कष्ट सहन के मार्ग को अपनाकर मृत्युदण्ड को स्वीकार कर लेता है और मृत्युंजय बन जाता है। अन्याय के समक्ष न झुकना गांधीजी का मुख्य आदेश था। गुणधर के चरित्र में कवि ने इसे प्रमाणित किया है :

"जानता हूँ आजका
सैनिक है क्रीतदास; अच्छी-बुरी बातों में
वह चुपचाप है परानुगत सर्वदा।
आज्ञा के न मानने का फल मिलता है क्या,
यह भी भले प्रकार जानता हूँ; तब भी
मेरा एक मात्र वहीं उत्तर है।"[१]

अहिंसा साधना की चरम सीमा पर पहुँचने पर मनुष्य गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ अवस्था को पहुँच जाता है, जहाँ सत्य साधक का जीवमात्र के साथ

---

१. उन्मुक्त : पृ. १३२

पूर्ण एकात्मभाव स्थापित हो जाता है। इस भावना के उदित होने पर मनमें सर्वजन हित की उदात्त भावना का आविर्भाव होता है। इसी विचारधारा के अनुरूप गुणधर आत्म परिष्कार से पूर्व उन्मुक्त होने का भाव तो अनुभाव करता ही है, साथ ही अपनी इस मुक्ति से वह मानव मात्र के हित की भी कामना करता है।

महात्मा गांधी अहिंसा का प्रयोग विस्तृत धरातल पर करना चाहते थे। वे अहिंसा को केवल व्यक्तिगत गुण नहीं मानते बल्कि सामाजिक, आत्मिक और आध्यात्मिक उन्नयन के लिये भी उसका प्रयोग आवश्यक मानते हैं। उनका कहना था "मेरा विश्वास है कि अहिंसा सिर्फ व्यक्तिगत गुण नहीं है, बल्कि एक सामाजिक गुण भी है, जिसे कि दूसरे गुणों की तरह विकसित करना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि समाज अपने आपस के कारबार में अहिंसा का प्रयोग करने से ही व्यवस्थित होता है। मैं जो कहना चाहता हूँ वह यह कि इसे एक बड़े राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर काम में लाया जाय।"[१] यही कारण है कि कवि ने अहिंसा के व्यापक प्रयोग का ही आग्रह प्रकट किया है। अहिंसा की सफलता इसीमें है, जब मनुष्य एकात्मभाव से प्रेरित होकर समस्त मानवता के सुखदु:ख के बारे में विचार करें। 'उन्मुक्त' में व्यापक लोकहित की भावना ही प्रकट हुई है :

> "केवल निज के लिये नहीं; निज का निजपन सब
> निखिल विश्व के साथ हुआ है संबंधित अब।"[२]

अहिंसा की सफलता के लिये कष्ट सहन का विशेष महत्त्व है। स्वार्थ भावना से परे शुध्द लोक कल्याण के लिये जो कष्ट सहना पड़े उसे मौन रहकर सहना चाहिए। इससे विजयी का अंत:करण कभी न कभी द्रवित होगा ही और उसके अंतर में सुप्त मानव जाग उठेगा। अहिंसा का आदर्श अहिंसक मरण का व्रत धारण करके प्रतिपक्षी की पशुता के भीतर छिपे हुए मानव रूप को उभारना

---

१. मेरा जीवन या अहिंसा की परीक्षा और सिध्दांत : ले. म. गांधी - पृ. ७२-७३
२. उन्मुक्त : पृ. १६३.

ही है। 'उन्मुक्त' में कवि ने इसी अहिंसात्मक त्याग भावना का निरूपण किया है।

गुणधर के कष्ट सहन एवं क्षमा भावना से प्रेरित होकर ही पुष्पदंत जैसा हिंसा नीति में विश्वास करनेवाला व्यक्ति भी पूर्णत: बदल जाता है तथा गुणधर के स्वर में स्वर मिलाकर कह उठता है :

"कथन तुम्हारा हुआ आज प्रत्यक्ष प्रमाणित।
हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है, वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर -
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।"[1]

पुष्पदंत का जीवन अब देश के लिये ही नहीं है, अपितु वसुधातल के जितने भी पद्दलित, पीड़ित एवं शोषित मानव हैं, उन सबके लिये है। उन सब की मुक्ति के लिये ही अपनी भूल भ्रांति त्याग कर नए जीवन का मंगलारंभ करता है, और सबके हित में ही अपनी विजयश्री का लाभ चाहता है। पराजय के उपरांत पुष्पदंत को अहिंसा ग्रहण करते हुए दिखाने में कविका मूल उद्देश्य हिंसा की निस्सरता को ही प्रतिपादित करना है। अपनी भूल समझ लेने के पश्चात् अहिंसा को स्वीकार करना स्वाभाविक है। इससे आत्मा का उन्नयन होता है तथा आत्मिक शक्ति एवं पौरुष में वृध्दि होती है।

'उन्मुक्त' में अभिव्यक्त अहिंसा पक्ष के अनौचित्य के बारे में विद्वानों के अपने विभिन्न मत रहे हैं। श्रीरामधारी सिंह दिनकर के अनुसार "उन्मुक्त' में पराजित लोगों को अहिंसा की दुहाई देते दिखाया गया है जो कायरता का सूचक है।"[2] डॉ. रामसकल राय ने भी अपनी पुस्तक-"द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य' में उन्मुक्त के बारे में इसी विचार का समर्थन करते हुए लिखा है : "उन्मुक्त में गांधीवादी विचारधारा का प्रचार अवश्य हुआ है,

---

१. उन्मुक्त : पृ. १६३
२. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र : पृ. ८८

परंतु वास्तव में अहिंसा का सिध्दांत हिंसक, बर्बर, दुर्दांत पशु वृत्तिवालों के सामने नहीं टिकता। उनसे पार पाने के लिये शक्ति साधन और युध्द तथा कूटनीति ही रामबाण सिध्द होती है। अस्तु कवि की भावना अत्यंत ऊँचे धरातल पर तो सराहनीय है, किंतु राष्ट्रीय नीति की नींव डालने और जीवंत समाज की रचना में यह कोरा सिध्दांत मात्र होगा। ....गांधीजी के अहिंसा सिध्दांत में वीरता, ओज, पौरुष के सर्वत्र दर्शन होते हैं पर सियारामशरणजी का काव्य तो पराजित स्वर का कारुण्य लेकर चला है।"[१]
जो भी हो कवि का उद्देश्य युध्द जन्य विभीषिका की भूमिका में उसकी निष्फलता दिखाना ही रहा है। युध्द से विनाश ही होता है, नव निर्माण नहीं। पराजित पक्ष के लोगों ने भी युध्द में भाग लिया था। युध्द की विनाश लीला को देखने के पश्चात् उन्हें युध्द की निस्सारता का भान हुआ। अपने कुकृत्यों अथवा गलत धारणाओं के लिये पश्चाताप करना ही ह्रदय परिवर्तन है। और ह्रदय परिवर्तन के उपरांत अहिंसा को अपनाना स्वागत योग्य ही है। पुष्पदंत भी घोर हिंसावादी हैं। किंतु अंत में वह युध्द के दुष्परिणामों से अवगत हो जाता हैं। अत: वह आत्म सुधार के लिये अहिंसा मार्ग का पथिक बन जाता है। वैसे घोर हिंसावादी विचारों के व्यक्ति का अहिंसात्मक मार्ग अपनाना कुछ विचित्र तो लगता है, किंतु आत्म सुधार की दृष्टि से किया जानेवाला पश्चाताप स्वागत योग्य जरूर है।

'गोपिका' भी गांधीवादी भावना से संपृक्त काव्य है। इसमें कृष्ण का इन्दुमती, रुक्मिणी और सत्यभामा के प्रति निर्मल अपार्थिव प्रेम रूप का ही चित्रांकन हुआ है। इसमें प्रेम के आदर्श रूप के साथ साथ यथार्थता का भी चित्रण किया गया है। प्रेम के तन्मय क्षणों में जहाँ इन्दु को अपने माधव के साथ तादात्म्य, चिरंतनता और असंख्यता का बोध होता है, वहीं उसमें मानवीय दुर्बलताएँ भी विद्यमान है। छप्पर को लेकर इन्दु का मोह और मंजु से ईर्ष्या इसी ओर संकेत करती है। निम्बा को सरसी का फूल तोड़े जाने पर वृंदवाटिका से बहिष्कृत किया जाता है। प्रेम में असफल हो दुर्जय और क्रूर

---

१. द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य : डॉ. रामसकल राय शर्मा-पृ. ३७१-३७२

घोर आतंकवादी बन जाते हैं। आमोद के नेतृत्व में नवगोप प्रतिरक्षा का प्रयत्न करते हैं। नवगोप अहंकार से विवेकशून्य हो कृष्ण तक को चुनौती देते हैं। प्रेम के इस यथार्थ मूलक चित्रण के साथ साथ कवि ने उसके आदर्शात्मक समाधान भी दिये हैं। राधा ने लोककल्याण के लिये अपना सर्वस्व त्याग कर चिर वियोग सहन किया। कवि ने राधा के आदर्श को रुक्मिणी व्दारा प्रकट किया है। किंतु गांधीजी के समान उनका मानना है कि विश्व कल्याण के लिये सर्वस्व समर्पित कर देना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु अन्याय का प्रतिकार करना, दोषी को दण्डित करना भी आवश्यक है। भामराग व्दारा सत्यभामा के सात्त्विक कोप व प्रफुल्ल महादान का आदर्श भी कवि ने प्रकट किया है। सत्यभामा इन्द्राणी के अनौचित्य का केवल प्रतिकार ही नहीं करती, वरन् वैयक्तिक संपदा [पारिजात] को सर्वजनीन बनाकर सर्वहित पालन के महत् उद्देश्य के लिये उसके साथ कृष्ण को भी समर्पित कर देती है। इन्दु भी साध्वी सती के प्रति किये गये अन्याय का प्रतिकार करती हुई चित्रित की गई है। वह सर्वहित के लिये केवल कृष्ण को ही समर्पित नहीं करती वरन् वृंदवाटिका सहित अपने को भी समर्पित कर देती है। इस प्रकार गोपिकाएँ पूर्ण समर्पणमें ही आह्लादित होती हैं। उनके मनमें यह अनुभूति जाग उठती है कि कृष्ण किसी एक गोपी के प्रिय पात्र नहीं है, वरन् संपूर्ण धरा के प्राणियों के प्रिय हैं। कृष्ण की भी सब पर समान स्नेह दृष्टि है। कवि का मानना है कि व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि के हित चिंतनमें ही सामाजिक सुख संभव है। संकीर्ण, स्वार्थी क्रूर तथा अमानवीय दुष्प्रवृत्तियाँ इस सार्वजनिक सुख संपादन में व्यवधान पैदा करती हैं। दुर्जय और क्रूर भी जब वाटिका पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न करते हैं तब सामाजिक शांति विच्छिन्न हो जाती है और वह सामूहिक सम्पत्ति की परिधि से हटकर वैयक्तिक संपत्ति बन जाती है। उसके रक्षणार्थ प्रहरी नियुक्त किये जाते हैं। दुर्जय का आतंक इतना अधिक बढ़ जाता है कि सामान्य जन जीवन भी उस क्षेत्र में असुरक्षित घोषित कर दिया जाता है। दस्यु स्वस्तिधाम को ध्वस्त कर देते हैं तथा वहाँ के नर नारियों को उत्पीड़ित करते हैं। लोकहितकारी तत्वों की हानि होती है। कवि ने इसमें मानव की हिंसात्मक प्रवृत्ति की ओर भी संकेत किया है। आज का मनुष्य अन्य किसी

शक्ति से नहीं, वरन् सहजाती मनुष्य से ही भयभीत है। वृंदवाटिका के प्रहरियों की चर्चा आने पर कवि ने इसी ओर संकेत किया है :

इसमें भी अन्य कृतियों के समान अहिंसा और प्रेम के प्रति आस्था प्रकट हुई है। सहिष्णुता, उदारता एवं प्रेम व्दारा दुर्जय, क्रूर और आमोद के हृदय परिवर्तन का चित्र अंकित कर कवि ने सद् से असद् और प्रेम से घृणा को जीतने का संदेश दिया है। स्वस्ति अपने कुंज में निम्बा को सादर स्थान देकर उसकी हार्दिक विशालता एवं श्री लता व्दारा उसके अंतस् के कल्मष को धो डालती है। कृष्ण रुक्मिणी के रथ पर दुर्जय को कुरुक्षेत्र भेजकर अपनी उदारता से उसमें परिवर्तन लाते हैं। कृष्ण की उदारता, साहिष्णुता और क्षमाभाव से आमोद भी अपने अहं पर लज्जित होता है। पिता की क्षमा एवं साध्वी पत्नी के त्याग एवं बलिदान से क्रूर आत्मग्लानि से भर उठता है। संकुचित स्वार्थ से ऊपर विराट् सत्य की अनुभूति सबको होती है। संकुचित स्वार्थ से घिरे, घृणा व्देष से आक्रांत विघटित एवं ह्रासोन्मुख विश्व की सुरक्षा के लिये कवि प्रेम एवं अहिंसा को ही समाधान रूप में प्रस्तुत करता है। काव्य के अंत में कवि का अभिप्राय स्पष्ट हुआ है :

रहना तुम्हे है यहीं श्री सुरभि पथ पर।
संचय के साथ-साथ त्याग का उपार्जन करो सप्रेम।
निस्सन्ताप जूझना है पक्ष-प्रतिपक्ष के समस्त दुर्जयों से,
सभी क्रूरों से, विजय समग्र पाओ-तब तक।"[१]

गोपिका में कवि ने कायरता की भी निंदा की है :

"कायर रे, मरन क्यों गया वहीं। चल वह स्थान दिखा
मुझको। ऐसे भीरुओं से वे लुटेरे भले।"[२]

इस प्रकार 'गोपिका' त्याग और समर्पण भावना से ओतप्रोत काव्य कृति है।

---

१. गोपिका : पृ. २३१
२. वही : पृ. १०२

गीता के द्वितीय अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने भी कायरता की निंदा की है। युध्दकाल में योध्दा के मनमें उत्पन्न मोह या दुर्बलता योग्य नहीं है। यह तो नपुसंकता है :

"भय से तू हटा पीछे कहेंगे ये महारथी;
जहाँ नित्य रहा मान्य हीन तू पड़ जायगा।
तेरे ये प्रतिपक्षी भी देंगे धिक्कार तुझे,
होगा सामर्थ्य निन्दा से और दु:सह दु:ख क्या ?"[१]

इस प्रकार सियारामशरणजी के काव्य में सर्वत्र अहिंसा एवं प्रेम के महत्त्व को ही प्रतिष्ठित किया गया है। मनुष्य की विरोधी भावनाएँ जैसे हिंसा, घृणा, कठोरता, अहंकार आदि की भी जीवन में उपयोगिता है, जिनके बिना जीवन एकांगी होगा। सियारामशरणजी के काव्य में इन भावनाओं का चित्रण अधिक विस्तार के साथ नहीं किया गया। ये विरोधी भावनाएँ जीवन के लिये निरर्थक सिध्द की गई हैं। उनके काव्य में गांधी दर्शन के अनुरूप त्याग, सेवा, प्रेम, सहानुभूति, उदारता आदि आदर्श भावनाओं का ही प्रसार मिलता है तथा ये भावनाएँ जीवन विकास के लिये उपयोगी सिध्द की गई हैं।

आत्मशुध्दि :

अहिंसा की इस अमोघ शक्ति को प्राप्त करने के लिये आत्मशुध्दि की आवश्यकता है। आत्मशुध्दि के लिये तप अर्थात् आत्मपीड़न और भगवद्भक्ति अनिवार्य तत्व हैं। आत्मपरिष्कार के लिये विनम्रता और अहंकार शून्यता भी आवश्यक है। सियारामशरणजी भी अपनी सुधारवादी नैतिक दृष्टि के कारण आत्म परिष्कार पर जोर देते हैं।

'दूर्वा-दल' में कवि ने 'आत्म-निवेदन' के रूप में प्रथमत: अपने अहम्शून्य व्यक्तित्व का ही परिचय दिया है। अपनी काव्य प्रतिभा के प्रति कवि को अहंकार नहीं है। उसे दूसरों के काव्य कौशल का भी परिचय मिला है।

---

१. गीता-संवाद : अनुवादक : सियारामशरण गुप्त : पृ. ३५-३६

उनके समक्ष अपने महत्व को नगण्य बताना कवि की विनयशीलता की ओर ही संकेत करता है। सरस्वती की आराधना में अनेक काव्यपुष्प अर्पित हो चुके हैं। अतः उसे अपना यह दूर्वा-दल चढ़ाते हुए संकोच होता है :

"सुमन यहाँ पर श्रेष्ठ एक-से-एक चढ़े हैं।
रूप, रंग, शुभ सुरभि यहाँ किसकी सीमा है ?"[1]

इसमें कवि ने यही प्रकट करना चाहा है कि ईश्वर की कृपा अकिंचन को भी समान रूप से प्राप्त हो सकती है। यह आवश्यक नहीं कि ईश्वर के चरणों में कीमती भेंट ही रखी जाय। यदि भक्त श्रध्दा भावना के साथ शुध्द मन से विनय पूर्वक तुच्छ भेंट भी समर्पित करे तो ईश्वर उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है। कवि का विश्वास हैं कि उसका मलिन हृदय ईश्वर का संस्पर्श पाकर ही परिष्कृत हो जावेगा और उसमें श्रध्दा भाव जागृत होगा। तभी वह ईश्वर के हृदय पर चढ़ने योग्य हो सकेगा। अतः कवि अपने हृदय कुसुम को सादर ईश्वर के चरणों में समर्पित करना चाहता है।

जीवनोध्दार ईश्वर की अनुकम्पा से ही संभव है। इसके लिये हृदय की शुध्द समर्पण भावना अपेक्षित है। कवि ईश्वर से यही अनुकम्पा बनाये रखने के लिये बार बार विनय करता है :

"है यह विनय बारंबार,
दीनता-वश हम न जावें दूसरों के व्दार।
यदि किसी से इष्ट हो साहाय्य या उपकार
तो तुम्हीं से हे दयामय, देव, जगदाधार।"[2]

कवि ईश्वर की दासता के अतिरिक्त अन्य किसी की दासता स्वीकार करना नहीं चाहता। कवि भक्तिपूर्वक ईश्वर के क्रोध को भी स्वीकार करने का इच्छुक है। वह हर्ष और दुःख में समान रूप से ईश्वर का स्मरण करना चाहता है। 'कामना' में आंतरिक शुध्दि का भाव ही प्रकट हुआ है। मानव मन

---

१. दूर्वा-दल : 'तुच्छ धूलि से बनी हुई' : पृ. ७
२. वही : 'विनय' कविता : पृ. १३

अत्यंत चंचल है। मनुष्य के मन में स्थित विषय वासनाएँ उसका सर्वनाश करनेवाली है, यह जानते हुए मनुष्य मन की चंचल वृत्ति के कारण विषयवासना में लिप्त रहता है। इससे उसका स्वच्छ निर्मल मन पंकिल जल की तरह मलिन हो जाता है। ऐसे शरीर में ईश्वर का वास कठिन हो जाता है। कवि अपने ह्रदय में स्थित ईश्वर के स्थान को निरंतर बनाये रखना चाहता है। अत: वह करूणामय ईश्वर को विनयपूर्वक इस मलिनता से मन को मुक्त करने की प्रार्थना करता है :

"छिपा हुआ है पद्मासन जो
यहीं तुम्हारे लिये कहीं,
उसके ऊपर चोट न आवे
यही विनय है करूणागार।"[१]

मानव जीवन को क्रोध, लोभ, मोहादि विषयवासनाएँ सदा घेरे रखती है। इससे मनुष्य का जीवन अध:पतित हो जाता है और प्रतिक्षण पराभव का खटका बना रहता है। किंतु कवि का विश्वास है कि घात-प्रतिघात सहकर मनुष्य सबल बनता है और दु:ख भार वहन करके ही उसका जीवन ऊँचा उठता है। कवि को विश्वास है कि वह निश्चय ही एक दिन इन विषय वासनाओं को जीतने में वह सफल हो जावेगा। उस समय ईश्वर इस मानस कमल में शांति सुगंधि भर देगा।

कवि ह्रदय के समस्त कल्मष को धोकर उसे जल की तरह स्वच्छ एवं निर्मल बनाना चाहता है अत: वह ईश्वर से प्रार्थना करता है :

"हे-जीवन स्वामी तुम हमको
जल-सा उज्वल जीवन दो।
हमें सदा जल के समान ही
स्वच्छ और निर्मल मन दो।"[२]

कवि लोक कल्याण के लिये सत्साहस रूपी धन और शक्ति पूर्ण तन की भी याचना करता है।

---

१. दूर्वा-दल : 'कामना' : कविता : पृ. ३२
२. वही : 'सुजीवन' कविता : पृ. ३३

'अपूर्ण यांचा' में स्वाद एवं इन्द्रिय लिप्सा के कारण उद्विग्न हुए मन को शांत करने के लिये कवि ईश्वर से शुध्द शांतिजल बरसाने की प्रार्थना करता है जिससे मनके समस्त ताप मिट जावे और सबका कल्याण हो :

"अब झट हल का संघर्षण कर,
इष्ट बीज बो दो हे विभुवर।
सफल-काम करना फिर करके
शांति-वारि-वर्षा सविशेष।"[१]

'लेखनी' में व्यक्तिगत स्वार्थ साधना के स्थान पर समष्टि गत सुख साधना को ही महत्त्व दिया गया है। जिस प्रकार लेखनी स्वयं रिक्त होकर औरों के आनंद के घट भरती है, अमृत वृष्टि करती है उसी प्रकार मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ भावना को त्याग कर समष्टिगत सुख की ही कामना करनी चाहिए। कवि आत्म परिमार्जन के लिये लेखनी से वरदान मांगता है :

"और हमें कुछ नहीं चाहिए
तुमसे हे सुभगे, वरदे,
ह्रदय-गुहा की गूढ़ कालिमा
तू तुरन्त बाहर कर दे।"[२]

आत्मशुध्दि के लिये तप या कष्ट सहन की आवश्यकता होती है। बिना शरीर को कष्ट दिये ईश्वर का साक्षात्कार संभव नहीं। 'समीर के प्रति' कविता में तप के व्दारा आत्मशुध्दि की ओर संकेत किया गया है। समीर के उदार, कर्मण्यशील, निरंतर परिश्रमी रूप को उभारकर कवि ने हमें यह संदेश देना चाहा है कि हमें भी समीर के समान आलस्य, अकर्मण्यता एवं संकुचित स्वार्थ भावना को त्यागकर सतत गतिशील एवं प्रयत्नशील बने रहना चाहिए तथा वेदाग्नि में जलकर देह को कुंदन की तरह पवित्र, शुध्द एवं

---

१. दूर्वादल : 'अपूर्ण यांचा' : पृ. ३५
२. वही : 'लेखनी' : पृ. ४०

निर्मल बनाना चाहिए। कवि भी समीर की इस तपस्या को देखकर विचलित हो उठता है और उसके साथ भ्रमण करना चाहता है :

"चलो, आज उड़ चलें वहाँ उस देश में,
दीखें सब जन जहाँ तुम्हारे वेश में।
दे यह जीवन डोर तुम्हारे हाथ में,
घूमें देश-विदेश तुम्हारे साथ में।"[१]

'पाथेय' की 'पूजन' शीर्षक कविता में भी कवि की अहंकार शून्य भक्ति भावना का ही परिचय मिलता है। कवि उत्तुंगकाय गौरव गिरि की पूजा करना चाहता है, किंतु उसका हृदय विकारयुक्त है। मन बारबार चंचल हो जाता है। अत: आध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त करने के लिये वह ईश्वर से पूजन की विधि की याचना करता है :

"हो शत-शत झंझावात प्रबल,
फिर भी स्वभावत: तू अविचल।
मैं तनिक-तनिक में चिर-चंचल,
मेटूँ कैसे यह अंतराय ?
तू गौरव गिरि उत्तुंगकाय।"[२]

'परस्पर' कविता में सदाचरण द्वारा जीवन को परिष्कृत करने का आग्रह ही प्रकट हुआ है। कवि अपनी उच्चता की प्यास को बुझाना चाहता है। अत: वह अनुरोध करता है :

"मेरे निम्न जीवन को ऊपर उठाके वहाँ,
शांत करो बंधुवर, उच्चता की मेरी प्यास।"[३]

'भ्रांति मोचन' में कवि ने यही स्पष्ट करना चाहा है कि निम्नस्थान में रहकर

---

१. दूर्वादल : 'समीर के प्रति' : पृ. ६२
२. पाथेय : 'पूजन' : पृ. २४
३. वही : 'परस्पर' : पृ. ४५

भी मनुष्य अपने सद्गुण एवं सदाचार के व्दारा अपने जीवन को कमल की भाँति निर्मल एवं पवित्र बनाये रख सकता है। निम्न पंक्तियों में यही भाव प्रकट हुआ है :

"सुन ओ, तू तो चिर निर्मल है;
चिंता क्या, यदि सुकृति प्रबल है ?
तुझ में मधु माधुर्य अचल है।
खिल उठ, पद्म प्रमाण !
नहीं है कुत्सित तेरा स्थान।"[१]

गांधीजी आत्मशुध्दि के अंतर्गत आत्मानुशासन के भी समर्थक थे। उनका मानना था कि जो मनुष्य अपने पर काबू नहीं रख सकता, वह दूसरों पर भी सच्चा काबू नहीं रख सकता। 'नकुल' काव्य में भी व्यक्ति को पवित्रता एवं आत्मानुशासन को आवश्यक बताया गया है :

"सोच रहे हैं आर्य कि गाण्डीवी के खर शर -
कर सकते हैं शांति प्रतिष्ठित इस पृथ्वीपर।
मुझको तो विश्वास नहीं है रंचक इसमें,
देंगे कैसे अमृत, बुझे स्वयमपि जो विष में !"[२]

'गीता' में भी आत्मशुध्दि का मार्ग बतलाते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्रिय नियंत्रण पर जोर दिया है।

स्पष्ट है कि गांधीजी के समान सियारामशरणजीने भी आत्म सुधार के लिये विनम्रता, हृदय की परिष्कृति, संयम एवं तप आदि का महत्व स्वीकार किया है। किंतु भक्त कवियों के समान कवि अहं को सर्वथा अवांछनीय नहीं मानता। और न ही उसका पूर्ण विसर्जन ही चाहता है। अहं में निहित आत्मविश्वास और स्वावलंबन की वह सराहना करता है। आमोद के अहंकार

---

१. पाथेय : 'भ्रांति मोचन' : पृ. ११९
२. नकुल : पृ. ११२

में निहित प्रेम को पहचानकर ही भगवान श्रीकृष्ण स्वयं उससे मिलने जाते हैं।

उपसंहार :

संक्षेप में, गुप्तजी ने प्रेय को छोडकर श्रेय की ही साधना की है। उनके काव्य में अभिव्यक्त करुणा आज की भौतिक कुण्ठाओं से निष्पन्न करुणा नहीं है, उसमें भारतीय अध्यात्म की मानव करुणा और भगवान बुध्द की मैत्री करुणा का रूप ही मुखरित हुआ है। इन कविताओं में उनका आशावादी स्वर ही प्रकट हुआ है। कवि ने यह सिध्द करने का प्रयत्न किया है कि मानव जीवन में उदित होनेवाली पाशविक वृत्तियाँ जीवन का सत्य नहीं है, जीवन का सत्य तो प्रेम है। घृणा पर प्रेम की विजय दिखाकर कवि ने गांधीवाद की ही पुष्टि की है। इस प्रकार सियारामशरणजी के काव्य में गांधीदर्शन के आध्यात्मिक पक्ष का सफल अंकन हुआ है।